तृतीय अध्याय

जगदीश गुप्त के खण्डकाव्यों का सामान्य परिचय

–"बोधिवृक्ष", "गोपा–गौतम")

तृतीय अध्याय

जगदीश गुप्त के खण्डकाव्यों का सामान्य परिचय

-"बोधिवृक्ष", "गोपा-गौतम")

जगदीश गुप्त नये कवि, नये कविता के प्रवर्तक होने के नाते उनके काव्य में नयी विचारणा की प्रेरणा मिलती हैं। रूढ़िवादी समाज की असहनीय विषमता और अकथनीय मानसिक यातना को गुप्तजी के लघुकाव्य "शम्बूक" में सहज अभिव्यक्ति मिली हैं। उसके बाद उन्होंने बहुत कुछ साहित्य लिखा, लेकिन "युग्म" के बाद गुप्तजी के लेखन कार्य में रूकावट आ गयी। मन:स्थिति और अकस्मात जीवन पर प्रश्नचिन्ह लगा देनेवाली बीमारी के गहन आसन्न अनुभव से गौतम बुध्द के विरागमय जीवन को आत्मीय भाव से देखने की दिशा मिली है। अश्वघोष के काव्यों, थेरी गाथाओं, जातक कथाओं को अनुशीलन के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य में गौतम बुध्द के जीवन को केन्द्र बनाकर लिखी गयी अनेक कृतियों का अवलोकन किया लेकिन गुप्तजी के मन में जो समस्या थी उसका समाधान उनको किसी भी साहित्य में नहीं मिला, बल्कि उसकी कल्पना को झकझोर कर बुध्द के महाभिनिष्क्रमण की पूर्व पीठिका को नये और अधिक विश्वसनीय मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करने में बड़ी से बड़ी सफलता मिली है।

जगदीश गुप्तजी ने "गोपा-गौतम" इस काव्य में गौतम के गार्हस्थिक जीवन से व्यक्तिगत विमुखता की इतनी गहरी अनुभूति की सहस्त्राब्दियों तक मानव समाज के एक बडे भाग को विश्वव्यापी स्तर पर उसकी निरन्तर प्रेरणा देते रहना अपने में इतना बडा तथ्य है कि उसके निराधार होने या मात्र परम्परित रूप में ग्रहण किये जाने की बात को अविश्वसनीय माना है।

"गोपा-गौतम" एक संवाद काव्य हैं। इस काव्य की रचना सन 1984 में हुई हैं। इस संवाद काव्य में ग़्यारह सर्ग हैं। इस काव्य में भिन्न धरातल पर बुद्ध युग के प्राचीन संदर्भ में उसकी नवीन अवतारणा हुई हैं। इसमें स्त्री-पुरूष के पारस्पारिक संबंध की अंतरंग स्थितियों का निरूपण किया है और उसके साथ ही मानवीय पक्ष को उभारा है। इस काव्य में गोपा और गौतम का संवाद हैं। संवादों की बहुलता और प्रमुखता के कारण इसे स्वंय कवि ने "संवाद-काव्य" की संज्ञा दी हैं।

"गोपा–गौतम" संवाद–काव्य में भगवान बुध्द के महाभिनिष्क्रमण की पूर्व पीठिका को नये और विश्वसनीय मनोवैज्ञानिक रूप में चित्रित करने का गुप्तजी ने प्रयास किया हैं।

"प्रचलित मान्यता के अनुरूप गौतम के महाभिनिष्क्रमण को अनुभवत्रय अर्थात जरा, रोग और मृत्यू दर्शन से ही अनुप्रेरित मान लेने पर संसार से उनकी उत्कट विरक्ति की पूरी भूमिका सामने नहीं आती।"[1] स्वयं कवि का मत ऐसा है कि बुढापा, बीमारी और मृत्यू के दर्शन से ही गौतम ने संसार का त्याग नहीं किया, बल्कि इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। डॉ.जगदीश गुप्त ने इस काव्य में बुध्द के महानिर्वाण के पहले वाले प्रसंग को लेकर इस काव्य का ढाँचा खड़ा किया हैं। परंतु इस पौराणिक प्रसंग को लेकर उसमें उन्होंने कई काल्पनिक प्रसंगों की भी उद्भावना की है। इसके द्वारा उन्होंने नारियों की समस्याओं का विवेचन किया है। कवि ने स्वंय कहा है कि –

"मैंने यशोधरा (गोपा) की नयी परिकल्पना की हैं। जिसमें उसके माता–रूप की अपेक्षा नारी–रूप प्रधान हैं। यह स्वाभाविक है कि गौतम की नारी–विषयक धारणा बनाने में गोपा का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विशेष योग रहा हो। अबलापन मुझे उसके सर्वथा अनुपयुक्त लगा। जिस गोपा को मैंने रूपायित किया है वह शान्त सौम्य स्वभाववाले गौतम की सहधर्मिणी होकर भी सबला है।"[2]

बुध्द के बहुजन हिताय महाकारूणिक, प्रज्ञासंपन्न एवं परममानवीय व्यक्तित्व की सृजनात्मकता का चित्रण कवि ने सामान्य मनुष्य के रूप में प्रस्तुत किया है। इस काव्य में 'नियोगाभास" अंश के अंतर्गत कवि ने गोपा–गौतम का मनोद्वन्द्वात्मक चित्रण किया है। इस काव्य में स्त्री–पुरूष के पारस्परिक संबंध की अंतरंग स्थितियों का निरूपण मानव को साक्ष्य रखकर चित्रित किया है।

"प्रश्नांकित बुध्द" इस प्रथम सर्ग में जगदीश गुप्तजी ने अनुरक्ति और विरक्तिमें किंचित अंतर होनेपर भी मनुष्य की राह परिस्थितियों के पथ पर किस तरह बदल जाती है इसका वर्णन किया है। इसमें बुध्द के मन की मर्मान्तक वेदना को निर्वेद तक पहुँचना और धुँधले अन्तराल को मिटाना असंभव होकर भी गुप्तजी ने अपनी कलम के द्वारा प्रयत्न किया है। यशोधरा का अनुराग और उनके विराग का दीप्त कराकर भी बंधन ही उनकी मुक्ति का एक आधार बन गया है। कवि यह कहते है कि यदि बुध्द ने याने गौतम ने नारी के कुत्सा–ग्रस्त रूप को पहचाना होता तो संघ में नारीयों को प्रवेश देने के लिए विरोध नहीं करते, नहीं तो संघप्रवेश में उनको सहज ही समन्वित करते,
लेकिन उनके शिष्य आनन्द के हट के कारण उन्होंने नारीयों को संघ में प्रवेश मुक्ति देने में स्वीकृती दी है। बुध्द तो एक परिपूर्णता के जीवित प्रतिरूप थे।

बुध्द का जन्म वैशाख मास के पूर्णिमा के दिन हुआ था और पूर्णिमा के दिन ही उन्हें दिव्य ज्ञान की प्राप्ती हुई थी। पूर्णिमा के दिन ही गौतम बुध्द का महापरिनिर्वाण हो गया था। बुध्द का जन्म लुम्बिनी वन में हुआ था और उन्हें कपिलवस्तु राजधानी में बहुत ही आनंदोत्सव मनाकर उनका स्वागत किया था। असितमुनी ने सिध्दार्थ के भविष्य के बारे में "वह धर्मपुरूष बनेगा" ऐसा भाकित किया था। इस प्रस्ताव को सभी कवियोंने चित्रित किया हैं, लेकिन जगदीश गुप्तजी ने एक नये ढंग से बुध्द को हाड-मॉस का प्राणी या एक सामान्य मानव के रूप में चित्रित किया है। कवि "गोपा-गौतम" इस संवाद काव्य के प्रथम अध्याय में बुध्द के गृहत्याग का कारण सिर्फ जरा, व्याधि, मृत्यु न होकर अन्य कारण भीहो सकते है ऐसा कहा है जैसे कि राहुल जन्म का समाचार सुनने पर भी वे विरक्त नहीं हुए। आखिर क्यों उनको गृहत्याग करना पडा इस सवाल का हल करने का प्रयास किया है।

""परिणय-प्रसंग" में कवि ने गोपा और गौतम के परिणय प्रसंग को चित्रित किया है। शाक्य कुल का राजा शुध्दोधन का पुत्र गौतम होने के कारण सब सुखसुविधा, रास-विलास उन्हें उपलब्ध थी लेकिन युवराज असमंजस में डूबें रहते थे ऐसी युवराज की स्थिति को कौन रोकेगा, तो उनका राजकन्या यशोधरा के साथ विवाह किया जाता है और उन्हें प्रेमबंधन से बॉधते हैं। विवाह के बाद की लज्जा, सौदर्य, राग-अनुराग, आदि का वर्णन किया है। जैसे कि –

झुका रहा वह शीश अवश
सिध्दार्थ – वक्ष पर।
तरूणाई ने तरूणाई मे
बाहु पाश से
दिया स्नेह भर ।
अधरों में जागा कंपन
जब श्वास-श्वास को
मिली उष्णता
घुलते रहे दृष्टि में चुम्बन
प्राणों में उसी सतृष्णता ।[3]

बोझीला अंतराल इस अंश में काम-क्रीडा का वर्णन प्राकृतिकता के साथ अत्यंत मार्मिक किया है। ग्रीष्म, वर्षा, शरद, मौसम में सृष्टि दुल्हन की तरह डोलने लगती है। उस प्रकार गोपा गौतम में

होनेवाले कम्पन, अनुराग, स्नेहभाव को प्रकट किया है। परिणय प्रसंग के बाद नारी के पाँव भारी न हुए तो समाज के लागों की बाते, परिवारवालों की अच्छी बुरी बातों को सहना पडता है। जैसे कि –

नहीं ऋतुऐं ऋतुमती को –
फलवती कर सकी आखिर ।
कौन दोषी है, बताये कौन कैसे ?
विष भरी निस्तब्धता से
हृदय दोनो के गये घिर ।[4]

दस वर्ष बीत गये लेकिन यशोधरा की गोद सूनी ही रही। यह व्यथा यशोधरा को बार–बार सताती रही। गान–गोष्ठियाँ, क्रीडाएँ, उद्यान विपिन, शाल भंजिकाएँ, यात्राएँ सब विस्मृति में चली गयी । यशोधरा को बन्ध्यापन्य का बोझ ढोना पडता है। सूर्याराधन, नव–ग्रह पूजन, टोने–टोटके, मन्त्र–तन्त्र, बल आदि उपाय व्यर्थ गये। औषाधियों का भी प्रयत्न असफल रहा। सब लोग यशोधरा को बाँझ कहते थे और पाप किया होगा इसलिए बाँझ रहना पडा आदि बाते सुनने पडती है। यशोधरा भी अपने आप पर कोसती रहती है। निष्फल यौवन, नारीत्व का अपमान, नारी जीवन आदि बाते मन में बैठने के कारण उनका आत्मविश्वास खो जाता है। अपने आपको वह अभागिन औरत समझती है। मुक्ति पाने का विचार भी करती है। अपने को बार बार कोसती है कि मेरा ही आँगन सूना कयों है आखिर मैने ऐसा कौनसा पाप किया है। स्वयं मै और प्रजावती, शुध्दोदन, द्वार, कक्ष, फुजन–परिजन सन्तति के हित ममता के कारण चिन्तित रहते है।

यशोधरा बालक्रीडा के स्वप्न भी देखती है और प्रश्नांकित मुद्रा में अपने आपको सवाल पूछती है कि मेरे आँगन में क्रीडा करता शिशु कभी दिखेगा ? यशोधरा पेट से न होने के कारण अब सिध्दार्थ भी अपने पुरूषत्व पर कोस रहा है, और एक चिन्गारी उनके मन में उद्दीप्त होती है कि यशोधरा बन्ध्या है या मै ही निष्फल नर हूँ, कैसे उसकी कोख भरे ? इसके लिए कौन से प्रयत्न करने चाहिए आदि बातों में सिध्दार्थ विवश रहता है। लेकिन एक दिवस अकंशायिनी यशोधरा ने अर्धो–निमीलीत नेत्रोंवाली स्वयंवरा ने नवसत्वा होने के अनुभव की प्रतीति को सिध्दार्थ से कह दिया। सब कुछ सिध्दार्थ समझ गये लेकिन अर्थ को सिध्द मानकर प्रिया परिहास जान कर क्षुब्ध हो गये और उपवन में चले गये और उपवन में चले गये और पीपल के पेड़ के नीचे बैठ गए। उस पेड़ की शीतल छाया में गौतम बुध्द ममता, माया को भूल जाते है। सिध्दार्थ क्यो चले गये इसकी चर्चा यशोधरा करती

है जैसे कि नियोग चर्चा आदि । गौतम को समझाने देखने का उसका जी चाहता है लेकिन देखूं बोलूं यह सोचते सोचते ही यशोधरा मूर्छित हो जाती है। यशोधरा नवसत्वा थी इसी कारण दोनों कुल इस शुभ समाचार से पुलकित हो गये थे। यशोधरा पर मन्त्रणाओं, यंत्रणाओं के मानो बादल ही उमड पड रहे थे। अजात शिशु के पालन की सभी जनों की चिंता लगी थी। किसी ने भी गोपा के मन की परवाह नहीं कि। एकमात्र प्रजावती उनसे सदय रहती थी। गौतम के सानिध्य से गौतमी को पीडा हो जाती थी मन में कातरता और तन में मूर्छा भर जाने के कारण गौतम को उसके पास जाने के लिए मना किया। यशोधरा के शब्द उनके हृदय में गुँजते रहे वे भी बडे उपेक्षित या अतिशय संशय में। सिध्दार्थ का प्रवेश अपने ही घर में घातक बन गया है और अपने ही आस्तित्व के बारे में वे स्वयं सोचने लगे। दस वर्षो के बाद गौतमी (यशोधरा) पर बन्ध्यापन का कलंक नष्ट हो गया। कुछ लोग धर्मनटी बनाने को कहते थे वे भी शांत हो गये। पुत्र बिना जीवन सारहीन होता है लेकिन वह चिन्ता भी दूर हो गयी। यशोधरा अपने अन्तर्मन से कहती है कि यदि पुत्री होती तो मुझे सुख होता लेकिन अन्य लोग पुत्र–पुत्री भेदभाव को लेकर मुझे दुःख देना सुरू करेंगे। जब निष्फल यौवन था तब सबकी बडी बुरी बाते सहनी पडी लेकिन अब परिणीता–प्रीता होकर मेरे मन में एक चिनगारी सी लगी थी कि सिध्दार्थ मेरी ममता माया को क्यों ठुकराकर चले गए। उनकी करूणा दया मेरे ही बारे में निष्ठुर हो गयी आदि विचार करके यशोधरा और सिध्दार्थ का मनोद्वान्द्वात्मक चित्रण अधिक मात्रा में किया हैं।

नियोगाभास सर्ग में गोपा गौतम के संवाद का वर्णन चित्रित किया है। गोपा गौतम की धर्मपत्नी होने के नाते उसपर उसका पूरा अधिकार है। जगदीश गुप्तजी ने इस काव्य में नारी को अबला के रूप में प्रकट न कर उसे सबला रूप में अंकित किया है कि –

"मैंने यशोधरा की नयी परिकल्पना की है जिसमें उसके माता–रूप की अपेक्षा नारी–रूप प्रधान है। यह स्वाभाविक है कि गौतम की नारी–विषयक धारणा बनाने में गोपा का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से विशेष योग रहा है। अबलापन मुझे सर्वथा अनुपयुक्त लगा। जिस गोपा को मैंने रूपायित किया हैं वह शान्त–सौम्य स्वभाववाले गौतम की सहधर्मिणी होकर भी सबला है।"[5]

शादीशुदा औरत पुरूषो से घिरी रही तो उस पर ऊँगलियॉ दिखायी जाती है। इस काव्य में यशोधरा को गौतम वैसा ही सवाल पूछने है तो गुप्तजी ने चित्रित की हुइ गोपा भी गौतम से पूछती है कि आप भी नारियों से घिरे रहते है। गोपा प्रश्न का जवाब प्रश्न से ही देती है। वे दोनों भी अपनी

अपनी तरफ से सफाया करते है। किस तरह नारियॉं नाटकीय मुद्रा में हाव–भाव करके ग्रीवा–भंग करती हैं, हॅंसती हैं, वक्ष के अलक्षित अवरूध्द द्वार खोलती है इसका पता गौतम के कथन हो जाता है। गोपा उसे खूब डॉंटती है और कहती है कि इसीलिए राजकाज में बहुत लीन रहते हो। अगर वह अनुरक्त हो गयी तो ब्याज में वसूल करना। पहले तीन ज्ञान के साथ इस चौथे ज्ञान की प्राप्ती भी करो। मैं तो कृतार्थ हो गयी। भाया होकर भी आपको माधुर्य नहीं दे पायी। इसके बाद गौतम गोपा को समझाता है कि सहज बात को टेढा मत बनाओ मुझको पाषाण मत समझो। गोपा उसे कोसती है कि क्या आपको चिढाने, हॅंसी–मजाक करने का अधिकार नहीं है आप तो हमेशा गंभीर बने रहते है।

गौतम देहों से ग्रस्त नहीं रहते तो संदेहो से ग्रस्त रहते थे। सब नारीयों एक जैसी नहीं होती हर एक में कुछ न कुछ विशिष्टता जरूर होती है। नारी लौकिक एषणाओं की मूर्तिमान परिभाषा है। संतान होने के बाद पहले जैसे पति पर उसका प्यार जुडा नहीं रहता, प्यार में कुछ अंतर आ जाता है। यहॉं एक नारी पर आरोप किया है। असल में वह पति को भगवान के समान मानती है और उसपर प्रेम की बारिश करती है। हमेशा प्यार करती है, लेकिन बच्चे की देखभाल करने के लिए पहले प्यारवाले समय से कुछ समय बचाकर बच्चे लोगों के लिए देने पडते है यह प्रमुख वजह है। वास्तव में [illegible]को पति का प्रतिरूप मानती है। राहुल भी गौतम का प्रतिरूप है उसे गोद लेने के लिए गोपा कहती है तो अपने अंतर्मन मे व्यथित होकर उसकी कथा को गोपन ही रहने देता है। दोनो में बहस होता है और अपने को असफल, निरर्थक कहकर गोपा को सुख स्वप्न का अनुभव लेने के लिए छोडकर स्वयं जाने की आज्ञा लेता है। जैसे की –

मेरी हर बात तुम्हें
लगने लगी है बुरी
ऐसे में मेरे यहॉं रहना निरर्थक है।
जाता हूँ,
हो जाओ लीन तुम
अपने सुख – स्वप्न में ।[6]

नियति ने इन दोनों को मिला था, इसलिए वे दोनों मुक्त नहीं हो सकते। घटनाचक्र तो हमेशा चलता ही रहता हैं मानव को उसके साथ घूमना पडता है। गौतम के चले जाने के बाद गोपा के होठ सूखने लगे,अश्रू से मुख गीला हो गया, रक्त शून्य काया हो गयी जैसे ही गोपा जर्जर होने लगी। गोपा बहुत रोती थी, धरती पर सोती थी, गोपा ने गौतम चले जाने के बाद सब कुछ छोड दिया मानो

उसके प्राण ही निकल रहे थे। गौतम के पद्चिन्ह ही वसुन्धरा के रत्न थे।

राहुल जन्मोत्तर इस संवादांश में गौतम ने राहुल के अस्तित्व पर शंका उत्पन्न की है। राहुल पर उसका शक है तो गोपा कहती है कि भार्या, पुत्र का तुम्हें स्वाभिमान नहीं है, तुम्हारी अहंता ही सर्वश्रेष्ठ लगती है। यशोधरा अपराधि होती तो उन्हें राज-प्रासाद में आश्रय नहीं मिलता दुष्यन्त की तरह मैं भी कब की भूल चुकी होती। गौतम कहते है कि नारी की जिव्हा ही एक सशस्त्र हथियार है। गौतम की मौन साधना पर गोपा बार बार आक्षेप करती रहती है। गौतम गोपा के मार्ग में कभी आड नहीं आते थे। उनके कक्ष में भी नहीं जाते थे। हर एक कर्म, भाग्य अपने ही साथ होता है उससे ही मानव को बिताना पडता है। उनतीस बरस वे घर गृहस्थी में रमे गोपा से जीवन की सार्थकता के लिए जाने की आज्ञा चाहते है।

मौन बने रहने के कारण विवशता आ जाती है। जो कुछ भी है वह व्यक्त करना ही चाहिए अन्यथा एक दूसरे के साथ गैरसमज फैल जाते है। अपनी व्यथा कहने को गोपा बार-बार गौतम से प्रेरित करती है, चुप होकर सहना गोपा के बस में नहीं हैं। गौतम गोपा को ही अपराधी मानते है तो वह कहती है कि देहधर्म पाप है तो उसके लिए हम दोनों भी दोषी है। गोपा सिध्दार्थ से कहती है कि राहूल की शपथ लेकर कहो कि मेरे सिवा किसी अन्य युवती को स्पर्श नहीं किया? जीवन को जीवन की तरह कभी नहीं जिया। गोपा भी अन्य रमणीयों को लेकर गौतम को सताती हैं। यहॉ पति-पत्नी का सच्चा रूप प्रकट होता है। वह सहधर्मिणी, परिणीता कुलवधू है। जगदीश गुप्तजी की यशोधरा स्वाभिमानी है। वह कहती है कि बिनाकारण किसी पर लांछन लगाने का तनिक भी अधिकार नहीं है। फिर मै तो आपकी भार्या हूँ आपके साथ पूरा दशक बिताया है। राहुल अपना पुत्र है यह उसे बार-बार कहती है, उसे विश्वास दिलाती है लेकिन गौतम उसकी बात पर विश्वास नहीं करते वे उसे कहते है कि तुमने गर्भ छिपाया क्यों ? मैं पिता होनेपर भी मुझको क्यों नही बताया? तुम्हारी गोद तो भरी मेरा क्या ? गुप्तजी ने कर्ण-कुन्ती का उदाहरण देकर बहुत ही सफलता के साथ व्यक्त किया है । जैसे –

"भर गये सूनी तुम्हारी कोख ।
सूर्य ने ज्यों कर्ण कुन्ती को दिया
इस प्रसव में मैं कहॉ था ,
नाम था मेरा ।"[7]

राहुल से कुल का यश बढ़ेगा सिर्फ नाम से ही मैं राहुल का पिता हूँ। इसमें गौतम की विविशता नजर आती हैं। पर एक दिन गोपा ने गर्भ के संबंध में बताने की कोशिश की थी लेकिन गौतम ने व्यंग्य किया था और तुरन्त आत्मकेन्द्रित हो गये थे। विमुख हो गये थे। गौतमी को मूर्च्छा आने के कारण राजकुल ने सिध्दार्थ को यशोधरा से अलग रहना उचित समझकर उन दोनों को अलग कर दिया था। अस्ल में यशोधरा का कोई भी अपराध नहीं था। पति पत्नी के बीच एक विश्वास की डोर: होनी चाहिए। जितनी तंग करोगे उतनी ही तंग जाती है। गौतम के वैराग्य की छाया राहुल पर नहीं पडने देना ऐसी सभी की तमन्ना थी। गौतम को सूचना यशोधरा अपनी दासियों के माध्यम से देने का प्रयास करती है लेकिन वे सब प्रयत्न असफल रहे। उसमें गोपा का कोई अपराध नहीं हैं। उन्होंने अपने प्रती होनेवाले कर्तव्य का पालन किया है। गौतम के मन में होनेवाले संदेह को तिलांजली देने से कहती है। नहीं तो अनुराग पश्चाताप में मिल जायेगा गौतम पति होने के कारण यशोधरा ने भी उनका भ्रम, उनकी व्यथा आदि समझ बुझकर उसे समझाना आवश्यक था। लेकिन यशोधरा पर भी कुलमर्यादा होने के कारण वह चुप रही है और उन दोनो में दूरी निर्माण हुयी है। जगदीश गुप्तजी ने हरिणी–व्याध चन्द्रमा–शीतलता आदि का उदाहरण देकर गोपा–गौतम में एक दुसरे पर होनेवाले आरोपों को स्पष्ट किया है। चन्द्रमा कुसुम की उपमा दी है। गौतम के बहस के कारण यशोधरा का धैर्य खो चुका है उसे गौतम की ममता चाहिए। यशोधरा अपने आप को सामान्य नारी मानती है।

मौन के एक लम्बे अन्तराल के बाद गौतम गोपा से कहते है कि तुम समझती हो इतना विशाल हृदय व्यक्ति मैं नही हूँ। इसमें गौतम का बड़प्पन दिखाइ देता है। लेकिन विशाल-हृदय व्यक्ति बनने का वादा जरूर करते हैं। और गोपा के प्रती सहृदयता भी प्रकट करते है। वे कहते है कि तुमने राहुल के साथ–साथ मेरे भीतर होनेवाले बुध्द को भी जन्म दे रही हो। जिसकी माता गौतम और पौरूष गोपा का है। नया व्यक्तित्व प्राप्ति का श्रेय सिर्फ गोपा को ही है। गोपा के ही कारण उसे अमृतसत्य मिला है। वे गोपा से कहते है कि तपलीन, एकाकी होकर तुम्हारे ही योग्य जैसा सच्चा सिध्दार्थ कहलाने का मैं प्रयत्न करूँगा। सच्चा सिध्दार्थ का आशय न समझने के कारण गोपा को जन्म की अश्रुमयी पीडा सागर से भी बडा जलाशय बन जाती है आदि का उदाहरण देकर स्पष्ट करता है और मन में ही कहता है केवल संकल्प ही उन्होंने किये है। जगदीश गुप्तजी ने गौतम के माध्यम से कहा जो गोपा के चरित्र को बहुत ही ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ हैं। गोपा सिध्दार्थ को अपने हित के लिए रोकती नहीं वह उसे मार्गस्थ बनाना चाहती है जैसे –

13125
A

एक दिन पाओगी

ठीक ही कहा था सिध्दार्थ ने,

अन्ततः कहीं भी उसे बाँधा नहीं स्वार्थ ने।[8]

राहुल जन्मोत्तर संवादांश 3 में जगदीश गुप्तजी ने समाज में घटित होनेवाली समस्या को गोपा गौतम के माध्यम से बतलाने का प्रयास किया हैं। जब स्त्री अन्य पुरूष के साथ बोलने लगती है तो उसके पति को बहुत घुस्सा आ जाता है और उसपर अपना रोब जमाता रहता है। तरह-तरह के आरोप उस स्त्री पर लगाता है। गोपा औरों के बीच चिपकी रहने के कारण गौतम की उसके प्रति होनेवाली अनुरक्ति तीखी विरक्ति में बदल गयी। इन बातों से तंग आकर गोपा कहती है कि आप जैसे सात्विक मन में अपनी अर्धांगी के बारे में आग जैसे शब्द का संदेह होता है तो आम आदमी तो बार बार नाही को संदेह लेकर सताते रहेंगे अंत में गोपा राम की उपमा गौतम को देती है। राम ने ही गर्हित संदेह के कारण आसन्न प्रसवा सीता को वन में भेज दिया था। गोपा ने गौतम को निर्वासन दे दिया था कि मृण्मय काया क्षणिक है जो कायाजात का मोह नहीं करना चाहिए। राहुल आप का है यह अश्रु को साक्षी लेकर कहती है गौतम हमेशा अपने में ही खोये रहते हैं। परिणय का एक दशक बहुत कठिनाई में गुजरना पड़ा। जैसे कि लोग बन्ध्या कहकर पुकारने लगे। बार-बार अपमान सहना पड़ा। दोनों कुलों की दुःख का कारण अकेली यशोधरा ही बनी। मेरा ही यौवन निष्फल ठहराया गया।

मौन का सुदीर्घ अन्तराल दोनों के बीच शिलाखण्ड सा भारीपन भरता रहा और दोनों का मन उसके बोझ से क्षण-प्रतिक्षण जीता, मरता रहा। अन्त में सिध्दार्थ गोपा को चुप न रहने के लिए कहते हैं, अंत तक तुम अकेली ही लांछन का बोझ ढोती रही और अपने आपको दोषी ठहराती है। गौतम ने अपनी कारूण व्यथा गोपा से कहने को मजबूर किया तो वह सुनाती है कि औरों की ओर अनुरक्त रहने का नाटक रचा था ताकि आपके विरागी मन को अपनी ओर खींचकर आपके पौरूष को जागृत कर सकूँ। तो आप क्षुब्ध होकर मेरे प्रति आसक्त हो गये कि दिन में भी यशोधरा के कक्ष के बाहर जाना छोड़ दिया। इस तुम्हारी बीमारी के कारण पुरजन-परिजन शंकित होकर मुझेही दोष देते थे। कुछ अनर्थ न हो इसलिए गोपा ने अपनी ही उदासीनता मन में ही दबाकर गौतम को सचेत किया, अपनी बाहों से मुक्त कर मार्गस्थ किया और उन्होंने स्वयं अपने दर्द को अंदर में दबोच लिया।

एकाग्र चित्त पाकर गोपा ने गौतम को प्रकृतिस्थ किया। गोपा ने उससे परामर्श नहीं लिया। गौतम के अनुसार अपने ही घर में पराये लोग अच्छे लगते है तो अपनत्व का अर्थ ही उस घर में नहीं रहता और अपनों से प्यार कम हो जाता है या सिर्फ प्यार का बुरखा होता है। गौतम का स्वाभिमान जब आहत हुआ तब उसका स्वत्व नीड नष्ट हो गया। जिसतरह शिव की तपस्या भंग करने के लिए काम ने मार को भेजा था। लेकिन बहुत प्रयत्न करनेपर भी शिव विचलित नहीं हुए थे आखिर मार ही पराभूत हो जाता है। लम्बा समय बीत जानेपर मार की तरह पराभूत हुआ गौतम भी उसी क्षण के अनपेक्षित बोध को भूले नहीं, वह भावना उसे बार-बार याद आती हैं। शिव से वैर निर्माण कर काम ने बहुत हलचल मचा दी थी उसी अनुभव की तरह गौतम को अचल का भास हो जाता हैं। गतिमान बिम्ब स्थिर हो गये। गौतम में परिवर्तन गोपा ने ही कर दिया है। दोनों वही होनेपर भी उनकी आशा-आकांक्षाएँ नदी की तरह उमड़ी है लेकिन मरूस्थल रिक्तता . से मचल उठा है।

नियोगाभास संवादांश -4 में गोपा-गौतम के नियोग की चर्चा की है। गौतम क्षत्रिय कुल के राजवंशी है उसकी प्रतिष्ठा में बाधा गोपा नहीं बनी। आत्मिक उत्थान में गृहस्थी की बाधा गौतम को लगती थी इसलिए गोपा ने नियोग की चर्चा नहीं की, गौतम तो एकाकी चिन्तन में डूबे रहते थे। लेकिन नारी की सफलता अपनी संतती में ही है। तो किसी भी व्यवस्था का बंधन वह मानती नहीं। परिणाम सहने की उनमें शक्ति होती है। नारी से लेकर जनपद में अनेक वाद विवाद किये जाते है। लेकिन नारी की मन की कोई परवाह नहीं करते। गौतम के कहने से माता ही पिता-गुरू से बढ़कर है। नारीरूपी माता को समाज में मान प्रतिष्ठा है। गुप्तजी ने दूध-दही बीज-वृक्ष का उदाहरण देकर नारी के अस्तित्व को गोपा के माध्यम से बहुत ही मार्मिक चित्रण करने में सफल हुए है। जैसे -

बीज कहीं का हो,
जो सींचता है, बोता है
फल-दल-तरू शाखा का
स्वामि वहीं होता है।[9]

स्त्री ने सबकुछ अपना बहाल कर पर भी संतान पर उसका ही अधिकार चलता ही है। जननी रूपी गौरव को सर्वथा अस्वीकृत किया है। असल में वक्ष से जिसके स्तन्य-धार बहते है वही

प्राणदायिनी जन्म की विधायिनी होती हैं। तब गौतम कहते है कि नियोग मार्ग उचित नहीं समझा तो उसके बारे में मुझे तर्क वितर्क मत सुनाओ। गौतम खुद स्वयं का अपराध मानते हैं, राहुल पर गोपा का ही अधिकार है, अपने को तो सिर्फ निमित्त मानते है। राहुल के अस्तित्व का श्रेय गोपा को देते है। उसी को ही निर्माण का बोझ डाल देते है। और स्वयं को विरागी मानते है तो गोपा माफी माँगती है और कहती है कि पुरूष ही नारी का सबकुछ है।

इसीलिए कहती हूँ बार –बार
नारी के विषय में,
पुरूष की अहन्ता है दुर्निवार ।[10]

अंत में गौतम मन ही मन में संकल्प कर अहंता पर पूर्ण विजय पाने की और घर छोड़कर विरागी भाव से धरती के कोनों कोनों तक छा जाने का विश्वास दिलाता है। इसतरह इस संवादांश में गोपा ने लाख कोशिश करने पर भी गौतम को उसके वैराग्यत्व की सफलता मिली है।

"यति और गति" संवादांश – 5 में यति और गति में होनेवाले अंतर को गोपा और गौतम संवाद के माध्यम से जगदीश गुप्तजी ने राम–सीता रावण का उदाहरण देकर अत्यंत सफलतापूर्वक स्पष्ट किया है। अनुभव के जरिये मिला हुआ ज्ञान और उसकी जाँच ही गोतम का पथ–दर्शक है। उसमें मन की आवाज भी सुनने का वह प्रयत्न करते है। गौतम का विवेक ही उसका साथी है। तो गोपा कहती है कि तुम राम नहीं है बल्कि एक धवल चन्दनी है। गौतम क्या सोचनेवाले और क्या करनेवाले है इसका कोई भी अंदाज नहीं लगता। गौतम को निर्वासित अवस्था में ही अधिक सुख शांति मिलती है। विषम सीमा को छूने के कारण गौतम की वाणी ठिठककर वे पत्थर जैसे होते हैं। गोपा और गौतम एक दोनो में खो गये थे। राहूल के जगाने से उनमें चेतना आती है और ताकते रह जाते हैं। दीपक के उजाले में धुम्र रेखा के कारण बनी छायाओं का चित्र अंकित किया है। उसके लिए हंस का उदाहरण बड़ा ही मार्मिक है –

देखते रहे चित्रित भित्तियाँ
पर्वतीय सीमा को पार तक जाती हुई
निर्मल आकाश में
उड़ते हंस–मिथुनों की दुग्ध धवल पंक्तियाँ

चोंच में दबाये हुए
सद्य–छिन्न अरूण श्वेत इन्दीवर
कितने कुशल हाथों ने इनको आँका होगा।
नीर–क्षीर विवरण का भाव
इन्ही की छवि से सर्वप्रथम
चित्रकार के मन के भीतर झाँका होगा।[11]

जगदीश गुप्त एक सफल चितेरा होने के कारण उनके काव्य में चित्रकला के प्रती आस्था यहाँ प्रकट हुयी है। साथ हि उनका प्रकृति पर होनेवाला प्रेम भी व्यक्त हो गया है।

गोपा और गौतम दोनों एक दूसरे के मन, स्वभाव को जान–पहचानते थे लेकिन संयोग या प्रीति के समय वे विचलित हो जाते थे। परिस्थिति के साथ चलने की उनमें क्षमता नहीं थी। हृदय–सिंधु की सैर करने के लिए आदिशक्ति ही कार्यरथ थी। मंथन करते समय किसी भी प्रकार की समस्या का सामना करने की ताकद गौतम में है। वे दोनो गतिशीलता को झेलकर अपना दुःख आपुन को ही सहन करना है। यह सोचकर अन्तर्मुख हो जाते है और प्रश्नांकित मुद्रा से मुख–सन्मुख होकर वे दोनो दृष्टि मिलाते हुए एक दूसरे में खो जाते हैं।

गौतम सभी का बोझ त्याग कर सहज जीवन जीना चाहता है। गोपा उन्हें आर्यपुत्र कहती है तो वे सहज पुकारने को कहते है। राहुल ने गोपा को अपने हृदय में बहुत ऊँचा स्थान दिया है। इसलिए गौतम अपनी अवमानना मानते है तो जगदीश गुप्तजी ने गोपा के माध्यम से संतान पर माँ–बाप दोनों का अधिकार होता है। यह बताने का प्रयत्न किया है। वे दोनों अपनी अपनी तरफ से शिशु पर अपना प्यार उंडेल देते हैं। उसी तरह गौतम भी राहुलपर प्यार करते है। इस सच को नकारा नहीं जा सकता। किसी का भी हमेशा मन एक जैसा नहीं होता उसमें अंतर आ जाता है। पति–पत्नी एक दुसरे को बहुत चाहते है लेकिन संतान के बाद दोनो में भी प्यार एक दूसरे के प्रती कम हो जाता है। व्यक्ति में प्रतिक्षण परिवर्तन तो होता ही है। प्राणों की गहरी आसक्ति में भी परिवर्तन होता है। मनुष्य के मन में चेतना अवस्था होती है उसपर प्रभाव करनेपर भी उसका निर्विकार विलग रूप बना रहता है। गौतम प्रज्ञा के चिन्तन में मग्न होते है तो अपना सबकुछ छोड़कर अपने ध्यान में विलीन हो जाते थे। महासागर की लहर की तरह गोपा भी एक

लहर बनने को तैयार है लेकिन गोपा को वह रोकते है और उसे कहते है कि लहर बनने के लिए पहले अपने अहंकार को खत्म करना चाहिए। पूर्ण ध्यान बिंदु की प्रचीती देता है। गौतम के अर्धोन्मीलित की लित कमलायत लोचनो में अपने दीर्घापांगी नयनों को भरते हुए जन्म–जन्मांतर की चेतना अनायास स्नेहाकुल दृष्टि में समकेन्द्रित हुए अपने प्राणप्रिया को अपने सौंदर्य के बारे में पूछती है। गौतम कहते है कि पिछला सबकुछ अर्थहीन है, अपने हाड–मांस के शरीर भी एक न एक दिन नष्ट होनेवाला हैं। सबकुछ निरर्थक है। परिवर्तन ही सृष्टि का सुस्थायी धर्म है। मन में होनेवाले आवेग प्रतिआवेग एक धर्मचक्र की तरह है। वह तीखी अराश्रों की ज्योति मन को हर समय छलती है। गौतम ने भटकनेवाले मन को अंत्यत निर्भयता से रोकने का प्रयत्न कर, मन का दृढ़ निश्चय ही एक सच्चा मार्ग हैं। जीवन में गति के साथ यति को जानना चाहिए। हृदय में एक लयबध्दता समायी है। उसके स्वभाव को आप जैसे प्रज्ञावान को परखाना चाहिए। परिवर्तन ही सृष्टि का अन्तिम सत्य है। धर्म, एक सृष्टि संकल्पना का पेहराव है। जो हमेशा परिधान किया जाता है। संसार में हर एक की अलग अलग दृष्टि होती है। सभी एक साथ देखेंगे तो सही दृष्टि होगी। जगत में ऐसा कोई केन्द्र–बिंदू नहीं है कि जिसके माध्यम से अन्तराल को और हमारे बीच में होनेवाले पंजे को हटा दूँ। इसने ही अस्तित्व को दबाकर कीचक बना दिया है। कृष्ण ने यमुना–दह में धँसकर दुःखों का नाश कर नृत्य किया था उसी प्रकार गौतम दुःखों का नाश करना चाहता हैं। इसलिए गोपा को शक्ति और लोक–व्यापी अनुरक्ति माँगता है। तो गोपा गौतम की जो महत्वाकांक्षा है वह पूरी हो इतना कहती है और सब यातनाओं का बोझ स्वयं पर लेकर सिर्फ गौतम का नाम लेकर सहने की हिमत बँधाती है। गौतम को मुक्त करती है।

आप ही हो मुक्त
मुझे मुक्ति कहाँ ?
मेरे पास
आप जैसी मुक्ति कहाँ [12]

परिणय की परिणति संवादांश – 6 में पृथ्वीपर फैले हुए दुःख के निराकरण का चित्रण अंकित करने का प्रयास किया हैं। गौतम के प्रश्नों का दंश स्वयं सहन करते हैं राहुल और गोपा पर उसका जरा भी असर पड़ने नहीं देता। लेकिन गृहत्याग से जनहित होता है तो राज्य में रहकर भी जनसेवा होती है। गोपा सारे दायित्वों को छोड़कर एकाकी साधना अपना लेना एक पलायन मानती है। राजतन्त्र सेवा करने को मिलती है लेकिन राजदण्ड बाधा बनता है। स्वार्थि लोग कभी भी नीचे स्तर

के लोगों तक सुख–सुविधा आने नहीं देते। जगदीश गुप्तजी ने समाज में होनेवाले शोषक वर्ग पर तीखा व्यंग्य कर अपनी लेखनी के द्वारा शोषित वर्ग पर अत्याचार की करूण व्यथा का चित्रण किया है कि स्वार्थी लोग याने की सत्ताधारी पहले अपने भूख मिटाते है और बचा हुआ अनाज या जूठन जनता को देते हैं। औरों पर दोष का आरोप करना ही राजनीति है। यश, ख्याति शासक की और दोष सब प्रजा के नाम पर होते हैं। किसी ने स्वार्थियों को विरोध करना चाहा तो उसका बुरा हाल किया जाता है। जैसे कि –

रखना दंद–फंद से
विरोध को विभाजित सदा
सत्ताधारियों का
कर्तव्य बन जाता है।[13]

समाज में रहकर दर–दर की ठोकरे खानेवाले लोगों को कोई न्याय नहीं देता। सब अपने अपने स्वार्थ पर अड़े रहते है ऐसे गणतन्त्र, राजयन्त्र से जन–हित नहीं हो सकता इसलिए गौतम गृहित स्वार्थ को त्यागकर जनकल्याण करना चाहते है और वही सच है। बिना पाश का कार्य ही अच्छा कार्य होता है।

समाज में बहुत कम लोग संयमी होते हैं। गौतम की मनुष्य पर आस्था हे। किसी भी नये मार्ग की सफलता तो उसके प्रयोग और अनुभव पर निर्भर होती हैं। उसके विचार को समझपर ही उसकी चित्त–वृत्ति का पता लग जायेगा। गोपा शासन की बागडोर गौतम को अपने हाथ में लेकर जनता का कल्याण अपने तरीके से करने को कहती है। गौतम कहते है कि सबकुछ नश्वर है तो व्यर्थ चिंता नहीं करनी चाहिए। सब दुःखों का कारण जन्म है। जन्म का कारण कोई नही जानता वह एक प्रकृति खेल हैं। गोपा को गौतम का मुक्ति का मार्ग ग्रहण करने के लिए कहते है तो गोपा को स्वप्न जैसा लगता है। परायापन अधिक महसूस होता है। राहुल को पुत्र न मानकर और मुझको त्यागने से राजवंश की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ेगी, मुझपर लांछन आयेगा। इसलिए हम दोनों को मत ठुकराइये। गौतम अपने विश्वास को कायम रखने के लिए मनोजगत से गहरा आधार चाहिए इसलिए देखते है तो जगत में चारों ओर भ्रष्टाचार, अनाचार फैला हुआ है। एक जमाना था पति मृत्यू के बाद वह सती जाती थी और आज वह अन्य पुरूषों से क्रीति–लीला के साथ खेलती है। गौतम ने गोपा

के स्वाभिमानी रूप को देखा है। गौतम की राग की दिशा फेर देने के लिए नर्तकियों का आयोजन किया गया था, तो उन्हीं के चरित्र का फलक लेकर नारी का चित्र गौतम ने आँका है। नहीं तो इतना गहरा ज्ञान गौतम को नहीं मिलता। नारी के बिना पुरूष जीवन अधूरा है। जीवन–रथ तो दो पहिये से ही चलता है। जगदीश गुप्तजी ने गौतम के कथनद्वारा यह स्पष्ट किया है कि पति–पत्नी के मन पर एक दूसरे का पूरा अधिकार होता है। गौतम के अनुरक्त ने गोपा को कभी भी बाँधा नहीं। गोपा को भी अपनी परितृप्ति में गौतम की परितृप्ति नहीं मिली। समाज व्यवस्था ने नर के लिए सारे अधिकार रचें गये सभी रास्ते खुले है लेकिन घर की परिसीमा में बाँधने के लिए सभी कर्तव्यों का बोझ नारी पर लगा दिया। अंत में गोपा अपनीही हार मानती है। तो गौतम कहते है कि यहाँ हारने या जीतने का प्रश्न नहीं है, बल्कि एक दूसरे के व्यक्तित्व को समझने की केवल एक समस्या है। उस समस्या का हल भी सद्भावशील स्वभाव से करना है। कितने वर्ष बीत गये फिर भी दैनंदिन व्यापार में ही उलझे हुए हैं। जीवन की गहराई हम देख नहीं सके है। तो गौतम कहते है कि –

उसी मृत्यू–भय से
मुझे पाना है परित्राण।
अपने लिए ही नहीं
सबके लिए,
धरती पर
लाना है परित्राण ।[14]

सिध्दार्थ चिन्तन महाभिनिष्क्रमण से पहले इस अंश में सिध्दार्थ के मन में अपने संसार के प्रती होनेवाले प्रेम, बंधन, वेग–आवेगों को चित्रित किया है। यशोधरा को भी अपने बंधन से मुक्त कर देना चाहता हैं। जगदीश गुप्तजी ने गौतम के माध्यम से यह संदेश दिया है कि जो कुछ भी मन में होता है वह व्यक्त करना चाहिए नहीं तो जीवन में उलझनों का सामना करना पड़ता है , और जीवन के प्रवाह में बाधा आ जाती है। यशोधरा को अच्छा–बुरा कहने के कारण स्वयं वे पछताते थे। अपने आप पर क्रोधित हो गये थे। उनके मन में संकल्पों की वाणी प्रकट हो जाती है। उसे वे अंतिम कल्याणी मानते है। गोपा की सहमति लेना यह विचार उनके मन में पैदा होता है लेकिन इस सृष्टि जो भी है वह सबकुछ नष्ट होनेवाला है यह समझकर आत्मसत्य का अन्वेषण

करना चाहते हैं। इसलिए गृह से निवृत्त होकर त्याग–मार्ग अवलंबना चाहते हैं।

इस अंश में गौतम के मन में होनेवाले राग–अनुरागों को अत्यंत मनोवैज्ञानिकता की तरह प्रकट किया है। यशोधरा ने गौतम को पुरूषार्थी, शत्रुओं का नाश, सत्ताधिकारी बनने के लिए कहा था, तब गौतम कहते है कि –

कर लिया मैंने स्वयं
अपनी सब इन्द्रीयों पर अधिकार
दमन कर दिया भय का क्रोध का
लोभ – मोह – काम भी
मुझको अब बाँध नहीं पायेंगे।[15]

सभी से गौतम ने मुक्ति पा ली है। उनका निर्वाण ही एक मात्र बिन्दु रह जाता है। अपने को धरती का पुत्र मानते है। धर्मचक्र का प्रवर्तक बन जाते हैं। सांसारिक बंधन करूणा के वास्ते सब अनिष्ट मानते हैं।और सबका कल्याण करना ही इष्ट मानते है। बीच में ही यशोधरा पर उनका ध्यान जाता हैं। यशोधरा गौतम के पावों में आँखों में आँसू भरे हुए जैसे कोई दहते मुरूस्थल में मछली की तरह अपने आप पर तड़प रही है। इसका कोई भी पता गौतम को नहीं था। ऐसे मौन ने ही उन दोनों को प्रणय–बन्धन में जकड़ लिया।

मुँद गये कब नयन उसके,
कब हुए बन्धन शिथिल
कब पा सके गति पुनः गौतम के चरण ?[16]

जगदीश गुप्तजी कहते है, जो गौतम बुध्द ने संकल्प किए थे उसको शक्ति कैसे मिली, गृह–त्याग की कल्पना कैसे भुगतनी पड़ी आदि। गौतम की विरक्ति की भावना क्यो अपनायी आदि से तंग आकर स्वयं कवि ही अपने आप से पूछता है कि गोपा, राहुल, तन, मन जीवन क्या सिर्फ मेरा है क्या ? दुःख दाह से मुक्त करना गौतम की युक्ति है लेकिन क्षण–प्रतिक्षण मरणोन्मुख जीवन से उदासीन रहना ही उसकी मुक्ति है।

यशोधरा चिन्तन महाभिनिष्क्रमण के बाद इस अंश में कवि जगदीश गुप्तजी ने यशोधरा की नारी सुलभ व्यथा को चित्रित किया है। राहुल और यशोधरा को सोते हुए छोड़कर गौतम महाभिनिष्क्रमण के लिए चले गये है। गुप्तजी ने गौतम के बारे में यशोधरा के माध्यम से कह दिया है किस मन के भीतर कब क्या होता है इसका पता कोई भी नहीं जान सकता। गोपा पर बार–बार आरोप किये थे लेकिन गोपा भी गौतम का छिपकर जाना नैतिकता के विरूध्द मानती है। गोपा कहती है कि शादी के बारे में दोनों ने मिलकर सप्त–पदी की थी वह भी व्यर्थ ही है। अग्नि–आहुति का कोई अर्थ नहीं है। यह सब दिखावा, ढोंग है। गुप्तजी ने सप्तपदी, अग्निआहुति आदि जो शादी के बारे में ब्राहमण द्वारा जो विधी किया जाता है उसपर तीखा व्यंग्य किया है। यशोधरा अपने भाग्य को दोष देती है। कुलमर्यादा के कारण गौतम के मन को वह नहीं समझ सकी। वह अपने आपको परित्यकत्या मानती हैं। मृत्यू की कामना वह करती है लेकिन शिशु का विचार आते ही विवश हो जाती है। दुःख ही दुःख होने के कारण वह बन्ध्या रहने में ही सुख मिल गया होता ऐसा सोचती हैं। और कहती है कि सीता विजन में प्रसूत होकर भी उन्हें अच्छा मातृत्व मिला लेकिन मैं ही अभागन औरत हूँ की घर में माता बनकर ही मुझे त्याग दिया है। राहुल अस्तित्व ही मेरे जीवन को मानो राहु बनकर ग्रसने लगा है –

राहुल का अस्तित्व
राहु बन कर ग्रस लेगा।
किसने सोचा था
सुधांशु ही विष उगलेगा ?[17]

गौतम ने गोपा पर बहुतसी आशंका ली थी लेकिन गोपा ने गौतम से कुछ भी शंका नहीं थी। गौतम का मन अशान्त था इसका पता गोपा को था लेकिन वे अपने को त्याग देंगे इसका अनुमान भी वह लगा नहीं सकती थी। अघटित घटित हो गया है मानो उसका स्वत्व ही खो गया है। जैसे कि धनूष से छूटा हुआ बाण कभी भी वापस नहीं आता। गोपा अत्यंत शोकाकुल होकर गति–अगति को नापने का प्रयास कर रही है। इस प्रकार गुप्तजी ने यशोधरा का एक मार्मिक, करूण, हृदयस्पर्शी नारी चित्रण किया है।

बोधिवृक्ष

डा.जगदीश गुप्त लिखित "बोधिवृक्ष" खण्डकाव्य में सोलह कविताओं का संग्रह है। उससे गौतम के जीवन संबंधी अनेक पहलू नजर आते है। जगदीश गुप्तजी ने बोधिवृक्ष में पहली कविता "नमन" हैं। इसमें उन्होंने महाबुध्दसे विश्वबन्ध प्रभु बननेवाले मनुष्य को प्रणाम किया है। दु:खी मनुष्य की दुर्बलताओं के प्रति ममता रखनेवाले मनुष्य में स्थित करूणा को प्रणाम किया है। जैसे बारिश का पानी सभी ओर फैलाता है लेकिन जहाँ अधिक गहराई होती है वहाँ अधिक इकट्ठा हो जाता है। उसी प्रकार गौतम का जीवन भी एक सतत बहनेवाले निर्झर की तरह है। बहुत ही कठिन और महान मार्ग गौतम ने अपनाया था इसीलिए गौतम का अस्तित्व जनमानस में अत्यंत प्रभाव से बसा हुआ है। लुम्बिनी वन में मायादेवी ने खड़ी हुई अवस्था में हीं "प्लक्ष" वृक्ष के नीचे शीशु याने गौतम को जन्म दिया था। जन्मतेही गौतम के कंठ से "अग्गो हस्मि लोकस्स" यह स्वर निकला था, इसमें सभी लोग भयभीत हो गये थे कि अपनी ही भविष्यगति इस शिशु ने कैसी जानी, या उसे अपने भविष्य के बारे में कैसा पता चला। इस तरह गौतम में बचपन से ही महामानव के लक्षण दिखाई देते थे।

विधाता ने गौतम का जो माया–ममता का छत्र छीन लिया सात दिन में ही गौतम की माता का देहान्त हो गया। महामाया की मृत्यू के कारण राजकुल कुण्ठित , शंकित हो गया। रोग–दर्शन से शीशु को पीड़ा न हो इसलिए शुध्दोधन दुसरी भार्या का विचार करते है लेकिन सगी माँ की तरह शिशु का पालन नहीं होगा इस सोच में डुबे थे, पर खुद महामाया ने ही गौतमी के हाथ में नवजात शिशु को देकर अपना समझकर सँभालने के लिए कहा था। एक प्रकार का नारी हृदय में वात्सल्य भाव स्थित होने के कारण गौतमी ने भी शिशु की जिम्मेदारी अपने पर ली। इससे नृपति शुध्दोदन और अन्य लोग भारमुक्त हुए थे। अपने शिशु के भविष्य के बारे में असितमुनी को पूछा था तो उन्होंने बताया था कि, या तो वह चक्रवर्ती राजा बनेगा या फिर धर्मपुरूष बनेगा।

"बोधिसत्व के जन्म के अनन्तर उन्हें माता के साथ घर लाकर शुध्दोदन ने बड़े बड़े पंडित ब्राहमणों से उनका भविष्य पूछा । पंडितों ने उनके बत्तीस लक्षण देखकर यह भविष्य बताया कि या तो वह चक्रवर्ती राजा होगा या फिर सम्यक सम्बुध्द होगा।"[18]

कपिलवस्तु में ही गौतम का मन रमें इस दृष्टि से नगरी को अत्यंत सुशोभित किया था। मन बहलाने के लिए निशा अप्सराओं का भी आयोजन किया था। किन्तु शुध्दोदन–गौतमी चिंतित रहते थे कि गौतम बुध्द न बन जाय। जैसे कि –

किन्तु चिंता – मुक्त मन उनका नहीं,
यह कुमार न बुध्द बन जाये कहीं ?
असित वचनों से त्रसित, भयभीत – मुख
वेधता उर को भवितव्य दुख ।[19]

महा–अमात्य से विजयादित्य से शुध्दोदन ने कहा था कि कभी भी गौतम के मन में विराग उत्पन्न नहीं होना चाहिए, दु:ख की छाया इसपर नहीं पडनी चाहिए आदि आदेशों का पालन भी होता था। शुध्दोदन मे मन पर गौतम की जो भविष्यवाणी बतायी थी उसका बहुत ही असर होने के कारण सिध्दार्थ में विरक्ति दिखाइ है, तो वे स्नेह विव्हल होकर सिध्दार्थ से विरक्ति के संबंध में पूछते है और सिध्दार्थ के मन की अवस्था देखते है और महामात्य से पूछते है तो महामात्य पिघल जाता है। अन्त में सिध्दाथे कहते है कि मैं चिन्तित नहीं हूँ तो फिर आप चिंतित क्यों है। मेरे लिए आप व्यग्र रहते है। आप मेरे पिता और शासक है। जो तुम कहेंगे वैसा ही मैं करूँगा ऐसा सिध्दार्थ ने आश्वासन देने पर शुध्दोदन चकित हो जाते है और उनकी गंभीरता, ज्ञान का अंदाज लगाते है। खेलकूद में कृशा के साथ सिध्दार्थ मग्न थे जब विजयादित्य बालक की प्रगति का लेखा लेने के लिए आये थे तब नृपति ने आशा भरी ऑंखों से महा–अमात्य को देखा तो उनकी दृष्टि ने भी बल बाल मन के राग की , अनुराग की विश्वास की रेखा खींच ली।

हंस–प्रसंग इस कविता में जगदीश गुप्तजी ने हंस आखेट के बारे में वाद–विवाद का चित्रण किया है। नन्द और सिध्दार्थ यह दोनों उपवन में ध्यान लगाकर बैठे हुए थे मानों धरती का जो बोझ ढोने का कौशल, शर्करा–कण और चीटी आदि उदाहरणों को सामने रखकर अपने आप में ही ऊँचे विचार अपने मन में स्थित रखने का प्रयत्न कर रहे थे। इतने में अचानक उनके सामने एक हंस रक्त से लथ–पथ होकर गिर पडा मानो वह अपने प्राणों की भीख मांग रहा था। उस हंस की दयनीय अवस्था देखकर तुरंत सिध्दार्थ अश्रुमुख होकर हंस की तरफ दौड पडे और उन्होंने विश्वभर का सारा दुख अपने मन ही मन में नाँप लिया। सिध्दार्थ ने अपने करूणामय हृदय से उस पंछी को

अपनी तरफ से प्यार दुलार कर इलाज करवाया। नन्द ने जल की बूँदे छिटकने से उनमें चेतना आ गयी और सिध्दार्थ उसे उठाने लगे तो आखेटक देवदत्त क्रोधित होकर आया, आखेट माँगने लगा तो सिध्दार्थ ने उससे कहा कि तू प्राणभक्षक हैं वह मेरा रक्षित पक्षी है इसलिए मैं तुमको यह हंस नही दूँगा। ऐसे ही वार्तालाप के कारण दोनों में वाद बढ़ जाता है, उचित न्याय करने के लिए वे दोनों संथागार चले जाते है। आखिर संथागार में सिध्दार्थ के पक्ष में ही विजय मिल जाती है। बीच में वनकुंज की तरफ से संगीत की धुन सुनायी देने लगी तो सिध्दार्थ का मन उन स्वरों की ओर खींचने लगा तो सिध्दार्थ ने यह जो मार कन्याएँ या संगीतिकाएँ दुसरों का मन बहलाने के लिए आयोजन किया जाता है। इस प्रकृति–व्यापार को अद्भुत कहा है और धरीत्री का चित्र आँका है। जैसे कि –

कीट हो या भेक हो, या सर्प हो या श्येत
क्षुधातुर हो जहाँ भी दो जीव आते पास
स्वंय बनते या बनाते दूसरे का ग्रास।[20]

लेकिन मनुष्य के बारे में सिध्दार्थ के विचार बहुत ही सुंदर है। वे कहते है कि मनुष्य जीव ही एक ऐसा है वह हमेशा पशुधर्मी नहीं रहता उसमें करूणा, स्नेह का प्रवाह उसके जीवन में बहता रहता है और उस करूणारूपी प्रवाह को निर्झर बनाकर सभी की तृष्णा मिटाने की मानो सिध्दार्थ ने कसम खायी हैं। इसमें सिध्दार्थ की मानवी समाजपर होनेवाला उत्कट प्रेम नजर आता है।

शाक्य कुल के राजा दण्डपाणि की बेटी का नाम कृशा है। कृशा सौंदर्य और अपने चरित्र के बारे में बहुत प्रसिध्द थी। कृशा सिध्दार्थ पर प्रसन्न थी। दोनों में एक दूसरे के प्रती आकर्षण बढ़ने के कारण पिता शुध्दोदन की चिन्ता को तनिक विश्वास मिल रहा था। सिध्दार्थ और कृशा के मिलन का संकेत समझकर महामात्य आदि लोग मन ही मन में आनंदित हो गये और राजसी संस्कार के सपने सजाने लगे थे। नगरवासियों की कामना थी कि शाक्य कुल का कारोबार सिध्दार्थ पर सौंप देना चाहिए। उनका यह लांछन शुध्दोदन दूर करना चाहते थे। इस समस्या को लेकर राजा शुध्दोदन से बातचीत करते तो वह आज्ञा, मान–मर्यादा के साथ अपने पितृ–आज्ञा का पालन करते थे। इससे सिध्दार्थ का अपने पिता के प्रती होनेवाला निस्सीम प्रेम दिखाई देता है। इसके साथ हि गौतम आखेट, शास्त्र–ज्ञान , मल–युध्द, संधान, लक्ष्य वेधन, गति–चालन, ज्ञानार्जन आदि विद्या में बहुत ही

कुशल थे। लेकिन चिन्तन, ध्यान, मनन, एकान्त में वे अधिक रूची लेते थे। इस धरतीपर सिध्दार्थ करूणा का साम्राज्य बनाने की उनकी तीव्र लालसा थी। ऐसे विचार से शुध्दोदन आश्वस्त हो जाते थे। लेकिन क्रीडा–स्पर्धा, अश्वारोहण, उद्यानोत्सव आदि में सिध्दार्थ विजयी होते तो कुछ क्षण के लिए तो सही वे प्रफुल्लित हो जाते थे।

एक उत्सव में यशोधरा पर सिध्दार्थ मुग्ध हो जाते है और उन दोनो में रागयुक्त बाते हो जाती है। यशोधरा के सौंदर्य का गुणगान भी हो जाता है। शुध्दोदन, सह महामात्य ने यशोधरा को कुल–वधू बनाना निश्चित किया था। लेकिन सिध्दार्थ के पहले भविष्यवाणी पढ़ने के कारण सभी लोग चिंतित थे। तो सिध्दार्थ नगरी में घूमने के लिए छंदक के साथ निकलते है तो रास्ते में जरा, रोग, मृत्यू, आदि से संबंधित या कोई भी रूकावट न आ जाय का प्रबंध किया जाता है, यदि आ भी जाय तो उसी जगह से झट निकलने के लिए कहा जाता है। यदि कुछ हुआ तो सेवक को मृत्यू–दण्ड की शिक्षा होगी। इसमें सेवक–शासक का चित्र जगदीश गुप्तजी ने बहुत ही सुंदरता से अंकित किया है और दृष्य का चित्र आँकने में भी डा.जगदीश गुप्तजी को काफी सफलता मिली है। राजेशाही का प्रभाव ही दिखाई देता है।

जरा, रोग और मृत्यू यह तीन दृश्य देखने के बाद गौतम के मन में विरक्ति पैदा हो गयी थी और उन्होंने संन्यासी–व्रत का दृढनिश्चय किया था। कारण स्वरूप उन्होंने व्रत–उपवास का आश्रय लिया था। उपवास के कारण वे निश्चेष्ट बन गये थे, देह कंकाल हो गया था। तब्बल छः वर्ष तक वे साधनालीन में मग्न थे। उनमें इतनी दृढ़ता थी कि सिर्फ वायु सेवन कर अपना आयु बताते थे। वे इतने समाधिस्थ हो गये थे उनकी श्वास–गति भी रूध्द हो चली थी, मानो उनमें चेतना ही नहीं थी। ऐसी अवस्था उनके साथ जो पाँच भिक्षु थे, वह भी किंकर्तव्यविमूढ़ कर भयभीत होकर चले गये। लेकिन नंदा–गोपा ने उनकी सेवा करके उन्हें नवजीवन दिया और उनकी दिन–चर्या में काफी मात्रा में बदल हो गया। तन–क्षय की अपेक्षा मन–क्षय प्रबल होना चाहिए। अपने मन पर काबू रखना चाहिए।

उरूवेला सेनानी की लड़की सुजाता ने एक वटवृक्ष को पूजा था कि यदि मुझे पुत्ररत्न प्राप्त हुआ तो मैं हरसाल पूजा–विधि करने का संकल्प करूँगी। सुजाता की कामना सफल होने के वास्ते वह वटवृक्ष की पूजा करने के हेतु वहाँ आती है तो वटवृक्ष के नीचे गौतम ध्यानस्थ देखकर

वह मन ही मन प्रसन्न हो जाती है और वटदेवता समझकर सुजाता उनकी पूजा करती है। गौतम का ध्यान मग्न होने के कारण कौण्डिन्य आदि संन्यासी चकित हो जाते है और पाँच शिष्य लौट जाते है। राजपाट घरद्वार त्यागकर आया हुआ इस व्यक्ति का नियति–नटी सुजाता ने ध्यान भंग कैसे किया। संन्यासी गौतम पर ढोंगी का लांछन लगाते है। सुजाता ने दिया हुआ स्वर्ण–पात्र में पायस का भोग गौतम ने लेने से गौतम को गुरू मानना भी अस्वीकृत कर चले जाते है। मनुज का दुख कैसे दूर करेगा ? इसका दुःख नारियाँ ही हरण करेगी आदि बातों से गौतम को संबोधकर बिना परिस्थिति समझे गौतम के प्रती होनेवाली श्रध्दा को ठुकराकर रूठकर चले जाते है। अविश्वास की ज्वाला में जलने के कारण वे उरूवेला छोडकर काशी चले जाते है। जब नववधू से सुजाता माता बन जाती है तब पहलेवाले संकल्प को अपनाकर शिशु को गोद में सँभालती हुयी महा वटदेवता को मत रूठने के लिए कहती है कि हे शरणदाता भेजपूर्णा को प्रथम सिंचन कराकर पूर्णिमा के दिन तुम्हारा अर्चन करूँगी । इस प्रसंग में जगदीश गुप्तजी ने अपनी "सुजाता" नामक कविता में सुजाता के सौंदर्य का वर्णन गौतम द्वारा अत्यंत कलात्मकता के साथ किया है। तुरंत काम सखा की भैरवी, चित्रा, कमलिनी, सुरभि, सुरूचि, यह पाँच सहचार्यिाँ गौतम के चित्त को विचलित कर देने का कार्य आरंभ कर देती है। यह पाँच कन्याएँ अपनी अपनी तरफ से गौतम पर अपना प्रभाव डालती रहती है लेकिन वे सब अंत में असफल हो जाती है। लिपी–तुपी धरती के सोच में गौतम डुबे हुए थे तो उसी क्षण सुजाता, पूर्णा दासी के साथ देख पड़ी तो गौतम ने अपने को वटदेवता न मानकर एक सामान्य आदमी होने के वास्ते उसकी वंदना, अर्चना का अधिकारी अस्वीकृत कर उनके पायस को समर्पित करते है। लेकिन सुजाता गौतम को वटदेवता, आराध्य देव मानकर चली जाती है। तपस्या–भंग होने के कारण मार संतुष्ट हो जाता है। बिना भाव देखे ही उनके शिष्यों ने सफेद को काला मान लिया था। सुजाता की वाणी से गौतम पर उदासी छा जाती है, सत्य भाव दृढ़ विश्वास जगाकर सुजाता की पावन पूजा स्वीकार कर वट की छाया जिस तरह सबको प्रिय लगती है उसी तरह अपना व्यक्तित्व बनाने की कामना करते है। और स्वयं पायस पात्र उठाकर, पायस ग्रहरण कर जल प्राशन करने के बाद वह पात्र निरंजना नदी में फेंक देते है और कहते है कि – "यदि मुझे ज्ञानप्राप्ति होगी तो यह पात्र प्रवाह की ऊपरी दिशा से जायेगा या न होगी तो यह भीतरी दिशा से निकल जायेगा।" सच हि वह पात्र ऊपरी दिशा से ही बहता गया। इसी प्रकार गौतम बुध्द के जीवन में सुजाता का स्थान बहुत ही ऊँचा है। मानो एक प्रकार की प्रेरणा ही साबित हो गयी है।

गौतम बुध्द के समाधि अवस्था में इतने तल्लीन हो जाते थे कि खुद मार और उनकी सेना को भी बुध्द का मन पाश मे आनने के लिए लाख प्रयत्न करने पर भी हार माननी पड़ी है। महारथी जैसे अन्य लोगों का बुध्द पर कोई प्रभाव नहीं पडा। मार का तो हर प्रयत्न असफल रहा। अंतिम उपाय समझकर उन्होंने भैरवी, चित्रा, सुरभि यह तीन लडकियाँ का सिध्दार्थ का मन विचलित करने के लिए आयोजन किया था। लेकिन उनकी भी न चल सकी। गौतम अपने निश्चय से इतने दृढ थे कि उनके सामने किसी का भी बस नहीं चल सका। गौतम अपने संकल्प में ही अडिग रहे। इन्द्रियों का उन्होंने दमन कर अपना मन हाथ में रखकर अपना लक्ष्य, साध्य और सत्य ढूँढने का उन्होंने व्रत लिया था । इस व्रत के मुताबिक वह प्रति मास में एक ही ग्रास का सेवन करते थे। इस कठिन तपस्या का उनके पाँच शिष्यों में स्वागत किया था। इससे उनका मन प्रस्फुटित हो गया, लौकिक जीवन ज्ञात दिशा की ओर बदल गया। बुध्दत्व प्राप्ति का सुदृढ़ प्रमाण गौतम ने देकर भूमिस्पर्श किया। एक बरस तक उनके व्रत का क्रम चलता रहा, उनके पवन जैसे मन की चंचलता वशीभूत हो गयी। सभी शिष्य भिक्षाटन के लिए चले गये और सिध्दार्थ ध्यान में मग्न हो गये। इस कविता में जगदीश गुप्तजी ने अपने कविता के माध्यम से सिध्दार्थ के द्वारा जलता दीपक आदि की उपमा देकर जीवन की समीक्षा की है। जैसे कि ध्यान योग के बिना कोई भी रचना असंभव है। अनुभव ही सर्वश्रेष्ठ है। भोग और रोग के बीच में जो अनुभूत सत्य प्रकट होता है उसको ही मनुज धारण कर असत्य को त्याग देता है। सिध्दार्थ के माध्यम से गुप्तजी ने कहा है कि द्वन्द्वयुक्त जीवन ही शोभन है लेकिन उसकी मुक्ति की कामना सब व्यर्थ है। भोग त्याग देने से मन की वासना मिटती नहीं पर सिध्दार्थ ने वन में बैठना और मन को कसना ही एक कठिन तपस्या मानी है। रस ही जीवन का आधार है। परिव्याप्त सौंदर्य में जो सीचित रस होता है उससे व्यक्ति ने वंचित नहीं रहना चाहिए। तो मन रूखा, तन भूखा ऐसे सूखे जीवन में लोकहित का कल्याण नही है ऐसा कहकर हृदय कमल में नारी–छवि लीन हो गयी। उसकी वाणी से उनका ध्यान भंग होकर मुक्ति का विमोचन हुआ। असल में सिध्दार्थ जन की भावना के भूखे थे। परमार्थ साधने के लिए उन्होंने स्वार्थ त्याग किया था। दावानल प्रसंग में जैसे पशु–पक्षी भयातुर हो गये थे वैसे ही दुख से जलता हुआ भयावह मन है। तो प्राणों की पावन शीतलता प्रदान कर विश्वभर करूणा का संचार, सिध्दार्थ चाहते है। इसलिए जन्म जन्म के सभी संस्कारों का क्षय करना है ऐसी बुध्द की वाणी सुनकर मार बहुत ही क्रुध्द हो जाते है। तरह–तरह के वज्राघात करके भी वह असफलता ही पाता है। और

अंत में मार द्वारा बहुत कोशिश करके भी सिध्दार्थ ही सफल हो जाते है। मार और उनकी सेना मौन हुए अमिताभ बुध्द की निर्मल मूर्ति, तेजोमय काया से दिव्य रश्मियाँ निकलते ही सब भाग जाते हैं। और आत्म-शोध का नया मार्ग उन्हें मिल जाता है, इससे इन्द्रदेव आदि प्रफुल्लित हो जाते हैं।

'बिम्बसार का कथन" इस कविता में मगध देश का राजा बिम्बसार के गौतम से संबंधित कहे गये कथन का वर्णन है। राजा बिम्बसार और शाक्य कुल का दृढ़ संबंध होने के नाते राजा बिम्बसार अपनी ओर से सिध्दार्थ राजत्याग न करे इसके वास्ते कुछ समझाना, बुझाना चाहते थे इसलिए वह सिध्दार्थ को कहते है कि हे क्षत्रिय कुमार तुम गोपा का प्यार छोड़कर , राजत्याग छोड़कर ऐसी कौनसी अभिलाषा है कि तुम निकल पड़े हो। जहाँ लता-तरू प्रफुल्लित होते है वहाँ आग का होना उचित नहीं है उसी तरह तुम्हें इतना वैभव संपन्न है कि यह विरागी होना उचित नहीं है। सुख, स्वामित्व त्याग देते है लेकिन खुद अपना व्यक्तित्व कोई भी त्यागने को कबूल नहीं करेगा। बिम्बसार कहते है कि तुम्हारे मन में कौनसी ऐसी वैरागी भावना है कि तुम विरक्त बनना चाहते हो तो तुम मुझे सबकुछ बता दो। तब मुझे मेरे पुत्र के समान हो तुम जैसे को चंदन जैसी खुशबू चाहिए यह भस्म-राग रक्तवर्ण जैसे वस्त्र तुम्हें शोभा नही देता। धर्म, संपत्ती और सुख की प्राप्ती से ही मनुज जीवन का साध्य पूर्ण हो सकता है अन्यथा नहीं, इसलिए तुम राजत्याग मत करो। तो सिध्दार्थ बिम्बसार को अपनी तरफ से उत्तर देते है कि मोहपाश, बंधन आदि में जखडनेवाला प्राणी मैं नहीं हूँ। तुम्हारी मेरे प्रती होनेवाली श्रध्दा मैं समझाता हूँ लेकिन करूणा का पात्र मैं नही बनूँगा। भले हि मैं जन्म से राज-पुत्र होकर भी मैं अपना साध्य सिध्द करूँगा । ज्ञान दिव्यता का प्रकाश होता है। इसलिए गौतम मोहतिमिर बनना चाहता है और स्वयं को त्राता याने रक्षक समझते है। बिम्बसार अपने राज्य देने के लिए भी कबूल थे लेकिन गौतम बुध्द उसका भी अस्वीकार करते हैं। तो बिम्बसार नत-प्रणत हो जाते हैं और मन ही मन गौतम के दृढ़ विराग का, अपना सबकुछ राजवैभव ठुकराकर त्यागमय जीवन जीने की अभिलाषा का चित्र आँकते हैं। त्यागवृत्ती के कारण ही गौतम तरूण होकर भी वयस्क लग रहे थे। ऐसे त्यागी राजाधिराज गौतम को प्रणाम कर स्वयं निष्काम होकर भी अपनी कामना पूरी हो गयी ऐसा मानते है। इस कविता में जगदीश गुप्तजी ने गौतम और बिम्बसार के कथन को अत्यंत सहजशैली में प्रस्थापित कर गौतम के महामानव रूप को चित्रित किया है ।

"तृष्णा और कृष्णा" इस कविता में डाक्टर जगदीश गुप्तजी ने गौतम बुध्द के प्रकाण्ड पाण्डित्य का दर्शन किया है । गहन आम्र वन में गौतम अपने श्रमणों के साथ संन्यासियों के वस्त्र में पधारे मानो अपने आपका दर्शन करते हुए जा रहे थे तो पाँच प्रधावित युवकों ने उन्हें देखा और एक वेश्या के बारे में पूछने लगे, वे पाँच लोग प्यास के मारे तड़प रहे थे, श्री-विहिन मुख पीले-पीले पड़ गये थे करूणता की दृष्टि से बुध्द की तरफ देखने लगे और अत्यंत उत्सुकता से पुछने लगे तो बुध्द ने उस वेश्या का वर्णन अतिशय लावण्यमयी ऐसा किया है। असल में उन्होंने उस वेश्या को देखा तक भी नही था। इसमें गौतम की दूरदृष्टी नजर आती है। वे लोग व्यग्र होकर उनका पता बार-बार पूछने लगे तो गौतम ने उसमें स्थित प्यासी – वृत्ति को जगा दिया, अपने ही भीतर झाँकने के लिए कहा। तो पहले वे गौतम पर क्रुध्द हो उठे लेकिन बाद में वे सभी जन विनम्र हो गये और अपने मार्ग में ऐसे पण्डित का दर्शन हो गया इससे कृतकृत्य होकर गौतम से शरण आ गये। इसतरह मानव के भीतर होनेवाली प्यासी वृत्ती पर काबू रखने की सलाह जगदीश गुप्तजी ने अपनी कविता के माध्यम से लोगो तक पहूँचाने का प्रयास किया है।

गौतम अपनी सेविका के हेतु नगर में गये थे अचानक एक द्वार पर भीड़ देखकर रूक गये तो उसके सामने एक कारूणिक दृश्य नजर आया की एक माता अपना एक मात्र सहारा दिवंगत होने के कारण छाती पीट-पीट कर क्रंदन कर रही थी। मानो उस वृध्दा पर बिजली ही गिर गयी थी। उसके बेटे का शव धरती पर रखकर सब परिवारवाले घेरे हुए थे। एक अचेतन को चेतनता कहॉ से आ जाय। वह माँ बार-बार पुत्र-पुत्र कहकर चिल्ला रही थी। तो गौतम के प्रभामय दिव्य रूप को देखकर वह वृध्दा गौतम को अपने पुत्र का जीवदान माँगने लगी। शान्तमना शासन करनेवाले राजाने उसे जिला देने का कबूल किया लेकिन एक शर्थ उसके सामने रखी कि जिस घर में मृत्यू न हुयी हो उसी घर में मुझे राइ के पाँच दाने लाकर देगी तो तुम्हारा पुत्र जिला दूँगा। तो माँ क्षणिक हाथ में पात्र लेकर याचक बनकर हर दरवाजे पर जाकर पाँच राई के दाने की भीख माँगती है लेकिन उसे एक भी ऐसा घर नहीं मिला कि जहाँ मृत्यू न हो, दुख न हो। वह वृध्दा थकी हुयी हताश होकर गौतम के पास आती है तो उन्होंने उसको प्रवचन देकर शान्त किया। कृष्ण ने जीवन के यथार्थ ज्ञान को देख लिया कि संसार में हर क्षण परिवर्तन होता रहता है तो अपना कुछ नहीं हैं। स्व-तन को कोइ भी साथ नहीं लेता। वह प्रणत हुयी, बुध्द चरण में शरणागत होकर बुध का सम्मान करने लगी। राइ में पर्वत दिखलाकर याने छोटी सी बात को बढ़ाकर कहकर उस

वृध्दा को जीने का मार्ग बतलाया। इसतरह गौतम के माध्यम से जगदीश गुप्तजी ने मनुष्य में दुःख सहने की ताकद होनी चाहिए। दुःख का मुकाबला करना चाहिए, जग परिवर्तनशील है तो मानव ने कर्तव्य प्रणीत होना चाहिए आदि की सीख देने की चेष्टा की हैं।

नापित प्रसंग में सिध्दार्थ की विद्या कैची की तरह बताया जो कि गुणन करने योग्य है। सिध्दार्थ के महान, तपस्वी, चिरशांत निद्रा को देखकर विक्षुब्ध, क्रोधी, लोग भी शांत हो जाते है। ऐसी चमत्कृति से चकित होकर अन्य लोग उनकी कलाकृति, कार्य आदि के गुणदोष का विवेचन करने लगते है और मन ही मन उनका दर्शन करते है। बुध्द एक राजकुलोत्पन्न होकर भी एक असाधारण व्यक्ति थे। उन्होंने सभी दुःख अपने ऊपर लीये हैं। उनको महाहिंसक भी कभी कुंठाग्रस्त नही लगता। गौतम दीर्घकाया, सौम्य मुखमुद्रा, सरल पदचार, सत्य का संभाषण मृदुल वाणी सहज व्यवहार अपनाते थे। कामदेव को भी उनके सामने हारना पड़ा है। उनपर घमंड की छाया कभी भी देखने नहीं मिलती। उनकी एकमात्र साधना निर्वाण का आधार था। सिध्दार्थ एक मनुष्य होकर भी उनमें एक देवता के समान चरित्रता, शुध्दि या उनका नैतिक आचरण था। गैरिक वेशवाला यह धर्मप्रेरक संघ शास्ता में हर प्रकार की कोमलता नजर आती है। उन्होंने मानव–मुक्ति का संदेश देश–विदेश में पहूँचाया है। बौध्द–धर्म प्रसार के कारण मानव को समता मिली उन्होंने जाति–पाति के बंधन तोड़ दिये और जन्मजात से ही सब समान होते है यह संदेश लोगों तक पहुँचाया दण्ड की वजह में पिसनेवाली प्रजा का रक्षण किया। राजवैभव छोड़कर उन्होंने प्रजाहितदक्ष कार्य अपनाया। हिंसा का युध्द होकर संत्रास मिट गया कोई भी व्यक्ति दास–स्वामी नही रहे। सभी लोग मिल–जुल के रहते थे।

शाक्य राज्य में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था थी। प्रजा शक्ति को ही महामन्त्र माना जाता था। कौलिय शाक्यों के प्रिय थे । कौल राज्य की दो कन्याएँ शुध्दोदन की मायाएँ थी। दोनों राज्यों पर सद्भाव रहता था। गौतम के मन में विराग उत्पन्न हुआ और वे जंगल में चले गये। यशोधरा को पुत्र रत्न हुआ कैसा दुर्भाग्य हैं। एक तरफ पुत्र प्राप्ती का आनंद और दूसरी तरफ पति–वियोग। अर्धरात्रि में सिध्दार्थ ने स्वमनोराज्य के लिए राज्य छोड़कर , दृढ बंधन तोड़कर चले गये। तो यशोधरा मन ही मन में सिध्दार्थ के बारे में सोचती रहती है कि जरा, मृत्यू को आजतक सभी ने देखा होगा लेकिन तुम्हें ही उस कुरोग की रेखा इतनी गहरी क्यों खींची। सारी सृष्टी दुःखमय है इस सृष्टा के विधान

को एकांगी क्यों माना? इसके पीछे कौनसा भाव? क्या कारण था। नियति वहीं थी लेकिन उन्होंने उसे मात्र निमित्त माना। आज के जिज्ञासाओं को दु:ख का उत्तर नहीं मिला है। मानव मन का कमल कब खिलेगा इसका पता नहीं चलता। तुम्हारी जैसी विरक्ति की छाया किसी के भी पास नहीं है। हर प्राणी कारूण्य भाव से ममता–माया पाता है। फिर भी एक प्रकार की दूरी भासित होती ही रहती है। सूर्य की तेजराशि पूरी भासित नहीं होती तो अपने को बुध्द मानने का साहस कैसे किया ? अत्यंत गहराई से निश्चल होकर सुख–दुख को भोगा है लेकिन यशोधरा को सिध्दार्थ की सिर्फ छाया चाहिए। तुमने अहिंसक भाषा को अपनाकर मनुष्य को जीने की एक नयी परिभाषा दी। देश–विदेश में सफलता पायी लेकिन इस महासिंधु में यशोधरा श्रध्दा–बिंदु समाया गया है।

सिध्दार्थ का चित्त अशान्त हो उठा हैं। सिध्दार्थ के अरमान अन्य लोगों की तुल्य में अलग थे। उन्हें प्राचीरों में बँधकर रहना पसंद नहीं था। उन्हें औरों की चिंता सदा लगी रहती थी। जैसे कि –

और गृहों के स्वामी दुखमय,
मेरे गृह के दास सुखी थे।
मैं विलास में नही निमज्जित
हो पाया, तो लोग दुखी थे।
धीरे धीरे मुझे जगत का –
कोलाहल एकान्त हो उठा ।
मेरा चित्त अशान्त हो उठा।[21]

राज्य–राज्य में संघर्ष होने के कारण सामान्य जन विवश हो गये और उनका ही शोषण हो गया। जिसप्रकार ध्रुवों की मायानगरी से उसीप्रकार सज्जनता बाहर निकाली गयी। सेनाओं को गति देने से सिध्दार्थ का मन पैरों से कुचलने से जिसतरह हालत हो जाती है उसीतरह उनके मन की दशा हो गयी। उसीसे सिध्दार्थ का मन बेचैन हो गया है। जब सिध्दार्थ औरों की ओर देखकर अपने की तुलना करते है तो वे स्वत्व का उपहास करते है। स्वयं रेशमी वस्त्र पहनना और अन्य लोगों के पास तन ढकने के लिए पूरा वस्त्र भी नहीं यह विषमता उन्हें पसंद नहीं हे। प्रतिष्ठित राजन्य वर्ग होकर जनता मारे मारे फिरे यह सिध्दार्थ को स्वीकार नहीं है, इसलिए उनका जीवन क्लान्त होकर चित्त अशान्त हो उठा है। सिध्दार्थ के सामने अर्धरात्रि में वह तीन भयानक दृश्य आये तो अचानक

नगर द्वार खुलकर छंदक को साथ लेकर सभी से मुक्ति पाने के लिए और जगत् हित के लिए वन में चले गये।

गृध्द–कूट पर बुध्द रहे थे, उनके बादल जैसे विचार घिर–घिरकर और उपदेश झरनों जैसे बह रहे थे। उनकी आवाज मधुर ध्वनी की तरह गुँज रही थी। महामन्त्री आये और कुछ लोग बिम्बसार का पुत्र अजातशत्रु का संदेश लेकर गृध्द–कूट पर आये, उनकी बात नतशिर होकर ध्यान से सुन रहे थे। देवदत्त जो कि संघ प्रमुख का पद न मिलने के कारण निराश हो गया था। वह संघ में फुट डालने का कार्य कर रहा था। इसकी वजह से वह वज्जियों से लेकर संघर्ष करने के लिए समक्ष आ गया था। देवदत्त के अहंकार वृत्ती के कारण सभी ओर आतंक छाने से प्रजा तंग आ गयी है। राज्य–सैन्य समीप खड़ा है तो रात्रि की पुण्य घड़ी समझकर आक्रमण शुरू हो गया। बुध्द के आशिर्वाद और उन्नत ज्ञान मुकुट के कारण महाराज की जय हो गयी। कीर्तिमान अजातशत्रु का कोई शत्रु होना संभव भी नहीं था। लेकिन यद्यपि वाजि–समूह वज्र के समान सुदृढ है तो अपनी धरती का प्यार जताने के लिए और गढ़ का संरक्षण करने के लिए उनका धेर्य, शौर्य वाजियों के शांत वाणों से पराजित नहीं होगे तो वे जीतेंगे ही। यदि उनमें गुरूजन प्रियता व्यवहार पूज्य स्नेह पवित्र तीर्थों का अभिमान है और वे सब संगठित है तो वे हर युध्द उन्हें एक आवाहन बनेगा और उनमें उनकी ही जय निश्चित होगी ऐसा वचन बुध्द ने दिया था। जो उनके साथ आक्रमण करेगा उसकी नियति का नाश हो जायेगा। यह सब बुध्द–वाणी सुनकर संतुष्ट होकर मन्त्रिवर अजातशत्रु के पास चले गये लेकिन उन्होंने उसे कुछ नहीं बताया कि बुध्द वचन से वे संतोषी नहीं होंगे। बुध्द अपने शिष्य मंडली सहित महाराज से भिक्षु दल लिये गृध्दकूट पर चले गये।

कोसल प्रदेश में अंगुलिमाल नाम का एक महापातकी रहता था। वह राह में अटके हुये पथिकों को लूटता–पाटता था और उन पथिकों के हाथों की अँगूलियाँ काटकर उससे निकला रक्त जीभ से चाटता था और कटी अँगुलियों की माला कर कभी गले में कभी कमर में बांधता था। अंगुलिमाल के इस कारनामे को जगदीश गुप्तजी ने उसके गुरू को दोषी ठहराया है। अंगुलिमाल के ऐसे कृतित्व में गुरू को आँकने का प्रयास किया है लेकिन दरअसल वह गलत है। कोई भी गुरू अपने शिष्य को बुरे मार्ग से चलने नहीं देता तो उसे समाज या परिस्थिति बुरे कर्म करने के लिए कारणभूत होती है। इसलिए वे हिंसा की प्रदक्षिणा करते रहते हैं।

जिस जंगल में अंगुलिमाल जैसे लुटेरे का वास्तव्य था उसी जंगल में बुध्द जा रहे थे। शिलाखंड की तरह अडा हुआ था उसने गौतम को रोकने की कोशिश की लेकिन वह रूके नहीं तो अंगुलिमाल भी चकित हो गया और कहने लगा कि यह कैसा निर्भीक पुरूष है इसको न मृत्यू भय है न तो वह विचलित होता है यह तो एक दिव्य शक्ति ही है। स्वयं वह साशंकित हो गया। स्वयं बुध्द ने अंगुलिमाल के सामने हाथ खडा किया और अँगुलियाँ काटने को और नूतन कलियाँ गूँथ कर माला पहनने की अभिलाषा को पूरी करने को कहा इतना ही नहीं तो बुध्द उसे सिर भी देने का वचन देते हैं। ऐसे बर्ताव से अंगुलिमाल अपने आप पर कोसकर बुध्द के सामने नतमस्तक हो गया और अपराधों पर सिसककर विव्हल कातर हो गया। अंगुलिमाल अपना असली नाम अहिंसक बताकर अपने आज तक का कार्य का ब्यौरा देने लगा और अपना शीश खडग से काटने लगा तो गौतम ने उसका हाथ थाम लिया। गारूडि की तरह एक दिव्य मन्त्र सा पढ़कर अंगुलिमाल का हृदय परिवर्तन किया। इसतरह जगदीश गुप्तजी ने गौतम में स्थित अहिंसा का वरण किया है। अंगुलिमाल राजवैभव पर मन ही मन में कोंचने लगा और सबकुछ बुध्द को समर्पित कर दिया। बुध्द ने उसका संकेत समझकर उन्होंने उसे अपनाया।एक हिंसा तत्पर दस्यु अन्त में एक भिक्षु बन गया। जैसे कि

जल में जल ज्यों मिले, संत हो मिला संत में।[22]

अंगुलिमाल भिक्षु बन गया यह आनंदवार्ता सुनकर प्रसेनजित चकाचौंध हो गये और सही जाँच पड़ताल करने के लिए चले गये तो अंगुलिमाल को भिक्षु के रूप में देखकर बुध्द के चरणों में वे सभी प्रणत हो गये।

बुध्द ने किसी को भी उपेक्षित दृष्टि से नहीं देखा एक बार लोहकार चेदी ने आमन्त्रित किया था तो उसके भी घर बुध्द गये थे। बुध्द के स्वभाव में घृणा, द्वेष नहीं था। वे सब को समान मानते थे। एक ही मानवजात को मानते थे। लोहकार के घर लोह-कर्म के सभी उपकरण मौजूद थे। धोंकनी से भट्टी तत्क्षण धधका देती थी तो बुध्द को लगता है कि अपना दुख दर्शन ही साकार हो उठा हैं। तो भी जगत हित के लिए कोई रचना का आयोजन संभव था। शुध्द धातु से शक्ति के साधन निर्मित हो गये। जीवनभर शिक्षा देने का प्रयास सभी लोगो ने किया लेकिन शान्ति नहीं पा सके। तो युध्द से मानव भी त्राण नहीं पा सकता। आत्मरक्षण का बुरखा पहनकर हिंसा के उपकरण बना दिये गये। हथियार पैना करते समय पत्थर

के फलक चमकते थे। धनुष्य पर छोड़ने के तीर तन रहे थे तब द्रोण–पात्र में अन्न लेकर चेदी आया तो बुध्द ने उसे अपनाया और स्नेहभाव से भोजन का स्वाद लिया। लेकिन उसमे शूकर मार्दव होने के कारण आसन्न विकार हो गया। बुध्द रूग्ण, जरायुक्त उनका देह होने से आहार ग्रहण के कारण उसे अतिसार हो गया तो सभी भिक्षु क्रोधित हो गये और चेदी पर चिल्लाने लगे। आँखों मे अंगार छा गया। तो भी बुध्द शान्त–चित्त थे। बुध्द कहते थे कि उसमें चेदी का अपराध नहीं है तो अपने ही कर्मो का फल मानते है इसमें गौतम बुध्द का बड़पन दिखाई देता है। अपना दुर्गुण भी वह स्वयं कबूल करते है। अहिंसा का व्रत लेकर ही मैंने मांस भक्षण किया है जो करना नहीं था वह किया है तो उसका दुष्परिणाम भोगना ही पडेगा। भिक्षुओं को सात्वंना देते हैं। श्रध्दा–भाव से खिलाया गया अन्न वह मांस हो या अन्य कोई भी हो वह शुध्द ही होगा उसमें चेदी का कुछ दोष नहीं है। उसपर रोष मत उतारो तुम सभी मेरे प्रती अगाध ममता के कारण चेदीपर विकृत हो गये हो। क्रोध तो अंधा होता है तुम दृष्टिवान होकर पतित मत बनो। यदि पतित बनोगे तो धर्म का प्रचार सर्वत्र नहीं करोगे। लोहकार का प्राणहरण कर मुझ पर उपचार करोगे तो तुम बौध्द–धर्म का प्रसार नहीं करोगे। इसमें बुध्द वचन से मानव के साथ मानव जैसा व्यवहार करना चाहिए यह सीख मिलती है। बुध्द–वचन से सभी का ज्वार रूक गया और बुध्द को चारों ओर घेर कर उनके सामने भिक्षू समूह झूक गया। मानो अपने किये पर वे पंछताकर शरण आ गये।

बुढ़ापे के कारण तन का बल टूटने से, श्वास घूटने से अचानक बुध्द गिर गये यश से वे अविनाशी होकर भी नश्वरता के बीच बुध्द घिर गयें। कोसों तक उनके विचार का विशाल वन फैलता गया और पुष्प की तरह दैदीप्यमान वह वन बन गया । लेकिन बुध्द की निंद्रित मुद्रा अचल हो गयी थी। अंतिम क्षण में उनके नयन फिर गये। वहीं स्थान बुध्ददेव का निर्वाण स्थान बन गया। दुखसागर में सभी लोग डूब गये। स्वर्ण गुण की भाँति चमकनेवाला सुवर्ण जैसा तब विलिन हो गया। शासकों का सैन्य क्रुध्द होकर सर्प की तरह फुंकार करने लगा अस्थियों का विभाजन हो गया। स्तूप रच पूजे प्रजानन और धर्म संघ की नियति में गति आ गयी। अष्टांग मार्ग – सम्यक दृष्टी, संकल्प, वाचा, कर्म, उपजीविका, प्रयत्न, स्मृती समाधी की परिणती हो गयी। बुध्द का निर्वाण हो गया लेकिन बुध्द के विचारों के अवशेष के चिन्ह रह गये। प्रतीक बोधिवृक्ष उनके आचार विचारों का साक्ष रह गया।

जगदीश गुप्तजी ने "अन्त" इस चौदहवी कविता में अन्त के रूप में बुध्द के त्यागी जीवन का विवरण किया है। उसके महान त्यागी व्यक्तित्व का चित्रण किया है कि, गौतम ने अपनी सहचारिणी यशोधरा को त्याग कर बुध्द अवश्य यशस्वी हुये लेकिन अन्त में वही उनकी प्रतिकृती उनपर छा गयी है। जिसतरह कवि की कविता जनमानस में छा जाती है। त्याग, ज्ञान संपादन करने का समर्थक है। बिना त्याग से ज्ञानी वृत्ति से जुडे रहना निरर्थक है। जलाशय की तरह बुध्द का हृदय जो कि हर प्यासे को जलरूपी वाणी का छिड़काव कर उसे तृप्त कर देता है। गगन जैसी छाया सभी को देते थे। जो भी उनके पास आता है तो उसे संतुष्ट करके ही भेजता है। जिसप्रकार एखाद वृक्ष अपनी छाया अन्यों को देता है लेकिन उसे कोई पत्थर मारे तो वह चुपचाप सहन कर छाया देता ही रहता है, उसीप्रकार गौतम का निरागमय जीवन है। गौतम के द्वारा गुप्तजी ने स्वार्थी-वृत्ति पर भी व्यंग्य किया है। पैसा ही सबकुछ माननेवाले लोगों को जगदीश गुप्तजी उन्होंने घोंघे के कीडे की उपमा दी है। वे कहते है कि उन्ही लोगों के कारण ही संसार में विषमता फैल गयी है। सामान्य जनों के अधिकार उनका स्वत्व छीनने का उसे कोई अधिकार नहीं है तो हर एक को स्वातंत्र्य मिलना चाहिए।

जन-जन का कल्याण यह भारत की भाषा को जीवित रखने के लिए समता का साम्राज्य, करूणा का स्वर आदि का निर्माण हो जाना चाहिए। अज्ञान को नष्ट कर समता का देदीप्यमान प्रकाश फैलाना आवश्यक है, और इसके लिए शान्तियुक्त का क्रांति का संघर्ष करना चाहिए। धन की सबकुछ और भौतिक दर्शन के पीछे लगे हुए लोग मानव स्वभाव की नहीं पहचानते उनकी दृष्टि सिर्फ धन इकठ्ठा करने के लिए लगी हुयी है। वे जीवन को नहीं जानते। सही अर्थ में ज्ञात अर्थ का अर्थ जिसे होता है वही मानव है बाकी सब दानव है। अंत में गुप्तजी कहते हैं कि पवित्र दृष्टि से धन साधन का अनुसरण करेगा तो अपने क्षमता से समान स्वीकृति से वह कभी भी असफल नहीं होगा।

डाक्टर जगदीश गुप्तजी 'त्रिरत्न" नामक कविता में कहते है कि पराधीनता एक प्रकार का पाप है और उसी कारण दु:ख का निर्माण हो जाता है। दु:ख कम करने के लिए स्वाधीनता का आग्रह करना एक सही मार्ग है। हर व्यक्ति ने हर प्रकार के मुक्तिपथ पर चलकर अपने समाज को अपनी तरफ से मुक्त करना चाहिए। गौतम ने उच्चकुल में जन्म अवश्य लिया था लेकिन उन्होंने

सभी मोह–पाश, राजवैभव, धनसंपत्ती को ठुकराकर जगत् कल्याण का मार्ग अपनाया था। सभी से वह बन्धन मुक्त हो गये थे। ताकि जनसामान्य को कुछ काम आ सकू। सिध्दार्थ ने अपने विरागमय जीवन से यह कह दिया है कि कोई भी मानव निकृष्ट नहीं होता, कोई प्राणी त्याज्य नहीं होता सब अपने अपने तरीके से पात्र ही होते है। उनको देखने की दृष्टि हर एक की भिन्न होती है। कर्म–भूमि सबकी है इसलिए इसपर सबका अधिकार है। किसी एक को अपना हुक्म चलाने का कोई अधिकार नहीं, किसी एक का राज्य नहीं है। चित्तवृत्तियों को वश करना हर मानव के पुरूषार्थ का पराक्रम है। लेकिन उससे वशीभूत होना पौरूषत्व का अपमान है। एक प्रकार का दिशाभ्रम है। कर्मकाण्ड, तीर्थाटन, हिंसा–यज्ञ आदि बाहयाडंबर बुध्द ने निषिध्द मानी है। कष्ट देनेवाली साधनाएँ ही गौतम को गर्हित है। गौतम के इस समता से भेदभव मिट गया। लोगों के मन में होनेवाले अंध विश्वास नष्ट हो गये।

गौतम का नैरात्म्यवाद भोगोन्मुखता का पर्याय नहीं तो भौमिकवादी सीमाओं से भी बड़तर उसकी पुण्य–पताका है। उसमें मानव को अपरिमित स्थान है। बहुजन के हित के लिए चेतना का वर्चस्व समर्पित किया है। विश्वव्यापी करूणा का संचार और उनकी दृष्टी निःकाम है, उन्होंने धन, मन, जीवन का दारिद्रय हटा दिया है। अहंकार का तिरस्कार, दुष्प्रवृत्तियों का दमन किया है, और मध्य मार्ग का अनुसरण कर मोक्ष का संचरण कर मानवता का हेतुयुक्त लक्ष्य बनाकर निर्वाण किया है।

सैन्यबल से स्थापन किया हुआ उनका कर्तव्यविधान नही था तो बुध्द ने श्रध्दामय हृदयोंपर ही अपना आदेश दिया है। हमेशा अच्छी चाल–चलन ही उसकी वाणी में स्थित थी। धनवैभव राज–शक्ति के लिए उपयोगी है लेकिन बुध्दद्वारा दिया गया त्रिरत्न उपदेश प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। बुध्द उपदेश आर्य–सत्यों की निष्ठा है। सन्मार्ग की प्रतिष्ठा करना मनुष्य की मुक्ति है। परंतु साधन–क्रम शास्त्रों ने मन शुध्दि का साक्षी खुद मानव को माना है। त्रिरत्न बुध्द उपदेश से धरती महानाद की तरह गूँज उठी, अम्बर गुनगुनाने लगा देश देश में बुध्द का "बुध्दं शरणं गच्छामि" का स्वर गूँजा। बुध्द का निर्वाण हो गया लेकिन बुध्द की वाणी आज भी हमे उनके कर्तव्य, महान त्याग की कल्पना देती है। एक स्थान पर गौतम बुध्द ने कहा है कि मेरा धर्म भाव सब स्वीकार करेंगे। जब तक मेरे शब्द रहेंगे तब तक वे स्वयं उनके अर्थरूप में नूतन अर्थ के माध्यम

से हमेशा नूतन संदेश देता रहूँगा। मानव मन में बुध्द द्वारा दिया हुआ ज्ञान का बीज छिपा हुआ है। हर मनुष्य प्राणी कायामय बोधिवृक्ष है। अधिक सम्मान के योग्य लघु समुह में विकास का द्रव संचयित है। प्रत्येक प्राणी में प्रेरणा बनी हुयी हैं। स्वतः स्फूर्त होकर उसकी गति भी अपूर्व हो जाती है। अखिल ज्ञान–विज्ञान साधना पथ के सभीजन पत्थर है।

प्रकृति नियन्त्रण में रखी हुयी है, मनुष्य व्यवस्था करनेवाला है उसमें अपने–अपने नियम है। वह खुद अपने कर्मों का उत्तरदायी है। वह अपनी गति संवाहक हैं। बुध्द का अंतःकरण एक रत्न की भाँति उज्ज्वल स्वयं प्रकाशित है। शान्त जलाशय की तरह पवित्र निर्मल है। बुध्द ने प्रत्येक गुपित घटना बिम्बित कर दी है। उन्हें जानना असम्भव नहीं है। मोह–पाश का दमन करना ही उसकी साधना है। यहीं उनकी ज्ञान–दीप्ति का नव संदेश है कि मोह माया के जाल में अटके हुए नहीं रहना चाहिए तो उनसे खुद की मुक्ति करनी चाहिए।

डा.जगदीश गुप्तजी के "बोधिवृक्ष" नामक खण्डकाव्य में "बुध्दस्तवन" अंतिम कविता है। इस कविता में गुप्तजी ने बुध्द का गौरवगान किया है। वे कहते है कि गौतम के अप्रतिम लावण्यमय सौदर्यरूप था वे जालपाणि पादावनध्दता थे। उनके बाहु पर्वत के समान बढे हुये थे वे अपने क्रम के अधिष्ठाता थे। उनके स्कंध अच्छादित और उनके जंघ मृग जैसे थे। नीलाकमल की उनके वृष–पक्ष्म थे, उनके नेत्र नन्दन की तरह शान्त, स्वच्छ थे। निरभ्र प्रकाश की तरह समाज संदर्शक था, कम्बुग्रीव, निर्मल आकर्षक थे। चेदी द्वारा दिया गया सूअर का भोजन उन्होंने चेदी का आत्मभाव दृढ़ मानकर ग्रहण किया। गौतम के विचार कल्पना से भी बढ़तर लेकिन करूणामय असीम घन व्यग्रतायुक्त थे। उनका समूह जनमानस में प्रिय था, परम शान्त लेंकिन वे दुख से व्याकुल रहते थे। पद्मपाणि में देखा हुआ प्रज्ञापारमिता युक्त देदीप्यमान दृश्य कब सुलझाएगा ऐसी चिंता में लगा रहता है। गले से गला लगानेवाला बुध्द ही संघ का रत्न था। इस मनुष्य जगत में एक मात्र बुध्द स्वयं सिध्दार्थ ही थे। पद्मपाणि से वज्रपाणितक बुध्द ही प्रतिष्ठित थे। बोधिसत्व उत्पन्न हो गये जो कि अपना चक्र चलाकर अपना प्रकाश फैला गये जो कि आज भी हम उस बोधिवृक्ष का पूजन करते है। उस महान आत्मा का स्मरण करते हैं।

निष्कर्ष :-

डॉ. जगदीश गुप्तजी ने "गोपा-गौतम" संवादरूप खण्डकाव्य और "बोधिवृक्ष" खण्डकाव्य में वर्णित यशोधरा और गौतम के माध्यम से समाज में फैली हुई विषमता नारी के प्रति समाज की दृष्टि आदि अनेक समस्याओं का वर्णन करके साहित्य प्रबोधन द्वारा समाज को सही मार्ग पर चलने का रास्ता बताया है। गौतम में स्थित गुणों का वर्णन, उसका समाज की तरफ देखने का दृष्टिकोण आदि का चित्रण बहुत ही सुंदर सहज भाषा शैली में चित्रित किया है।

अनुभव के जरिये मिला हुआ ज्ञान और उसकी जाँच ही गौतम का पथदर्शक है। किसी का भी मन एक जैसा नहीं होता परिवर्तन ही सृष्टि का सुस्थायी धर्म है। व्यक्ति में परिवर्तन प्रतिक्षण होता ही रहता है। इस दृष्टि में सब क्षणभंगुर है सारे दुःखों का कारण जन्म है। मन में संकोच नही होना चाहिए। संकोच के कारण ही एक दूसरे के मन में उलझन पैदा होती है।

आज की समाजव्यवस्था, दरिद्रो के प्रती आत्मीयता, पीडित लोगो के प्रती प्रेमभावना, शोषकों पर रोष, प्रकृति प्रेम, विश्वव्यापी करूणा का संचार आदि गौतम में स्थित विशेषताओं का वर्णन, नारी के प्रती समाज की दृष्टि, याने कि बिना संतान नारी को बन्ध्या कहा जाता है। कुलवधू के उन्हें कुलमर्यादा में ही रहना पड़ता है। नारी को लांछन का बोझ अकेली को ही ढोना पड़ता है। नारी की सफलता उसकी संतती पर ही निर्भर होती है। पती-पत्नी में आत्मविश्वास ओर सच्चाई की कड़ी निर्माण होना आवश्यक है। आदि नारी विषयक समस्या का वर्णन डॉ. जगदीश गुप्तजी ने अपने इस दो खण्डकाव्यों में बहुत ही मार्मिक, सुष्ठु शैली में वर्णन किया हैं।

<u>संदर्भ सूची :-</u>

1. डा. जगदीश गुप्त, "गोपा गौतम" वाणी प्रकाशन, 61 एफ कमलानगर, दिल्ली 110 007, प्रथम संस्करण 1984, पृ. मुखपृष्ठ
2. वही, पृ. 9
3. वही, पृ. 31
4. वही, पृ. 36
5. वही, पृ. 10
6. वही, पृ. 54
7. वही, पृ. 65
8. वही, पृ. 71
9. वही, पृ. 87
10. वही, पृ. 89
11. वही, पृ. 94-95
12. वही, पृ. 103
13. वही, पृ. 109
14. वही, पृ. 117
15. वही, पृ. 122
16. वही, पृ. 124
17. वही, पृ. 131
18. धर्मानन्द कोसम्बी, "भगवान बुध्द और दर्शन", बोधिसत्व का भविष्य, पृ. 98
19. डा. जगदीश गुप्त "बोधिवृक्ष" वाणी प्रकाशन, 4697/6 , 21 ए दरियागंज, नयी दिल्ली 110 001, प्रथम संस्करण 1987, द्वितीय सजिल्द संस्करण 1989, पृ. 17
20. वही, पृ. 24
21. वही, पृ. 65, 66
22. वही, पृ. 72